प्रकीर्णक-पुस्तकमाला—८

राज्यप्रबंध-शिक्षा

अर्थात्

श्रीमान् राजा सर टी० माधवराव के माइनर हिंटस नामक पुस्तक का हिंदी अनुवाद

अनुवादक

रामचंद्र शुक्ल

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

द्वितीय संस्करण] १९२८ [मूल्य ।।।)

Published by
K. Mittra
at The Indian Press, Ltd.
Allahabad

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press,
Benares-Branch.

भूमिका

प्रत्यक्ष ज्ञान की आवृत्ति का नाम अनुभव है। सांसारिक व्यवहार में जितना दूसरों के अनुभव से हमारा काम चलता है उतना उनकी कल्पना आदि से नहीं। अपने वा दूसरों के अनुभव के सहारे हम थोड़ी दूर आँख मूँदकर भी चल सकते हैं। इतना भरोसा हमें किसी और दूसरी वस्तु पर नहीं हो सकता। किसी एक मनुष्य से यह सुनकर कि "मैंने कई बार ऐसा होते देखा है" जितनी जल्दी हम किसी कार्य में प्रवृत्त होते हैं उतनी जल्दी सैकड़ों सत्यवादियों से यह सुन कर नहीं कि "हम निश्चय समझते हैं कि यह बात ऐसी ही है।" अत: समाज के हित और सुबीते के लिए यह आवश्यक है कि उसमें अनुभव की हुई बातों का अच्छा संचय रहे जिसमें लोगों को अपना कर्त्तव्य स्थिर करने के लिए इधर उधर बहुत भटकना न पड़े।

आज इस अनुवाद द्वारा हिंदी पाठकों के सामने देशी राज्यों के प्रबंध आदि के विषय में ऐसे पुरुष का अनुभव रक्खा जाता है जिसने अपने नीति-बल और व्यवस्था-कौशल से भारतवर्ष के दो बड़े बड़े राज्यों को चौपट होने से बचाया था। जिन लोगों ने राजा सर टी० माधवराव का नाम सुना होगा वे यह भी जानते होंगे की उनकी सारी आयु देशी राज्यों की

शासन-पद्धति सुधारने में बोती थी। वे बड़े भारी नीतिज्ञ और राज्य-सञ्चालक थे।

माधवराव का जन्म कुंभकोणम के एक महाराष्ट्र ब्राह्मण-कुल में हुआ था। उनके पूर्वज महाराष्ट्र आधिपत्य के समय दक्षिण गए थे। उनके चाचा वेंकटराव ट्रावंकोर राज्य में दीवान थे और पिता भी उसी रियासत में एक ऊँचे पद पर थे। माधवराव ने मदरास के गवर्नमेंट स्कूल में शिक्षा पाई और गणित और विज्ञान में बड़ी दक्षता प्राप्त की। कुछ दिनों तक ये वहीं गणित और विज्ञान के अध्यापक रहे। फिर सन १८४९ में अकाउंटेंट जनरल के दफ्तर में नौकर हुए। कुछ दिनों वहाँ रहकर वे ट्रावंकोर के राजकुमारों के शिक्षक होकर गए। इस कार्य्य में उन्होंने इतनी दक्षता दिखाई कि उन्हें शीघ्र माल के मोहकमे में एक अच्छी जगह मिली और धीरे धीरे वे दीवान-पेशकार हो गए। जिस समय माधवराव ट्रावंकोर राज्य में घुसे उस समय उस राज्य की बड़ी बुरी दशा थी। चारों ओर घोर कुप्रबंध और अँधाधुंध थी। लार्ड डलहौज़ी बार बार धमका रहे थे कि यदि झटपट सुधार न हुआ तो ट्रावंकोर राज्य अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया जायगा। माधवराव ने देखा कि राज्य के वे बड़े कर्म्मचारी जिनको बाहर के स्थानों में अपने अपने काम पर रहना चाहिए, वे भी राजधानी में रहकर दीवान के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा करते हैं। उन्होंने महाराज से प्रस्ताव किया कि सारा राज्य बहुत से

ज़िलों में बाँट दिया जाय और वे ज़िले ऐसे कर्म्मचारियों के अधीन कर दिए जायँ जो वहीं रहें। इस प्रकार माधवराव के अधिकार में जो जो ज़िले पड़े उनका प्रबंध उन्होंने ठीक कर दिया। धीरे धीरे महाराज उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे। सन् १८५७ में दीवान कृष्णराव के मरने पर माधवराव उनकी जगह दीवान बनाए गए। उस समय उनकी अवस्था केवल तीस वर्ष की थी।

दूसरा कोई होता तो ट्रावंकोर की उस समय की अवस्था देख घबड़ा जाता। जिधर देखो उधर बेईमानी, अत्याचार और अव्यवस्था। माधवराव ने निश्चय किया कि जब तक देशी राज्यों में भी अँगरेज़ी शासन के सिद्धांतों का प्रचार न किया जायगा तब तक उनकी अवस्था न सुधरेगी। राज्य की आर्थिक दशा दिन दिन गिरती जाती थी। माधवराव ने बहुत से सुधार किए जिनसे राज्य की आमदनी बहुत बढ़ गई। बहुत सी वस्तुओं की बिक्री आदि का अधिकार थोड़े से लोग अपने हाथ में लिए बैठे थे जिससे व्यापार बढ़ने नहीं पाता था। माधवराव ने यह प्रथा बंद कर दी। बाहर जानेवाली मिर्च पर उन्होंने महसूल लगाया। पीछे अँगरेज़ सरकार से जो संधि हुई उसके अनुसार आमदनी और रफ्तनी पर जो बड़े बड़े महसूल थे वे उठा दिए गए। बहुत से ऐसे कर भी उठा दिए गए जो प्रजा को बहुत खलते थे और जिनके वसूल करने में ख़र्च इतना पड़ता था कि राज्य को कुछ विशेष

लाभ नहीं होता था। माधवराव ने राज्य के कर्म्मचारियों की भी तनख़्वाहें बढ़ाईं जिसमें वे घूस न लें। इंजीनियरी और शिक्षा-विभाग की उन्नति की। अदालत में अच्छे क़ानून जाननेवाले जज नियुक्त किए और ज़ाब्तः दीवानी, ज़ाब्तः फ़ौजदारी, हद समायत और रजिस्टरी के क़ानून का प्रचार किया। ट्रावंकोर राज्य की काया ही पलट गई। ट्रावंकोर के महाराज इन पर इतने प्रसन्न हुए कि नौकरी छोड़ने पर भी इन्हें बहुत दिनों तक १०००) रु० महीना पेनशन देते रहे। सरकार से भी इन्हें 'सर' का ख़िताब मिला।

ट्रावंकोर से जब ये अलग हुए तब सरकार इन्हें बड़े लाट की काउंसिल की मेंबरी देने लगी, पर इन्होंने अस्वीकार किया।

सन् १८७३ में इंदौर के महाराज तुकोजी राव होलकर ने इन्हें अपना दीवान बनाया। यद्यपि महाराज बहुत सा अधिकार अपने ही हाथ में रखते थे फिर भी इंदोर में इन्होंने बहुत सा सुधार किया। जिन दिनों ये इंदोर में थे उन दिनों विलायत में भारत की आर्थिक स्थिति के विचार के लिए एक कमेटी बैठी थी। सरकार ने इन्हें विलायत जाकर उसके सामने साक्ष्य देने को कहा, पर इन्होंने अस्वीकार किया।

ठीक इसी समय महाराज मल्हारराव बड़ौदे की गद्दी से उतारे जा चुके थे। उनके समय के दुराचार, अत्याचार, कुप्रबंध और अँधाधुंध से बड़ौदा राज्य जर्जर हो रहा था। उत्तराधिकारी महाराज सयाजीराव नाबालिग थे। उनकी

नाबालिगी में राज्य सँभाले कौन? अंत में माधवराव बुलाए गए।

सर माधवराव ने वहाँ ट्रावंकोर राज्य से भी गहरी बुराइयाँ पाईं जिनकी जड़ बहुत दिनों की जमी हुई थी। कुछ लोग गद्दी के लिए ज़ोर मार रहे थे। वे कुछ दे दिलाकर शांत किए गए। महाराज मल्हारराव के समय के बहुत से कर्म्मचारी राज्य का बहुत सा रुपया क़र्ज़ लिए बैठे थे जो धीरे धीरे उनसे निकाला गया। जौहरी, सौदागर, नौकर, सिपाही, तथा और बहुत से लोग जो अपना बहुत सा रुपया बाक़ी बताते थे संतुष्ट किए गए। इस प्रकार माधवराव ने पहले चारों ओर से षड्यंत्र की संभावना बंद की, फिर वे शासन के सुधार में लगे।

इन्होंने एकबारगी शासन का सारा क्रम नहीं बदला। धीरे धीरे प्रजा की प्रवृत्ति बदलते हुए इस बात का सुधार किया। इन्होंने प्रजा के ऊपर से कर का बोझ भी बहुत कुछ हटाया और राज्य की आमदनी भी बढ़ाई। पुलिस का सुधार किया। न्यायालयों की व्यवस्था ठीक की। राज्य की आमदनी में से बहुत सा रुपया इन्होंने सर्वसाधारण की शिक्षा और स्वास्थ्य-रक्षा के लिए निकाला। ज़मीन की मालगुज़ारी वसूल करने के बड़े सहज ढंग निकाले। किसानों के ठेकों की मियाद इन्होंने बहुत अधिक बढ़ा दी जिससे वे ज़मीन को अपनी समझ उस पर पूरी मिहनत करने लगे। सारांश यह

कि इनके अखंड परिश्रम और नीति बल से बड़ौदा राज्य सर्वाङ्ग सुव्यवस्थित होकर पूर्ण सुख समृद्धि को पहुँचा ।

सन् १८८२ में राजा सर टी० माधवराव बड़ौदा राज्य की नौकरी से अलग हुए और अंत समय तक मदरास में रहे । ये जब तक जीए तब तक बराबर सार्वजनिक कार्य्यों में उद्योग करते रहे । नेशनल कांग्रेस की तीसरी बैठक (मदरास, १८८७) की स्वागतकारिणी समिति के ये सभापति हुए थे ।

जिस समय राजा माधवराव बड़ौदे में थे उस समय वर्त्तमान महाराजा साहब सयाजीराव नाबालिग़ थे और राजकाज की शिक्षा पा रहे थे । इन्हीं महाराज साहब की शिक्षा के लिए सर माधवराव ने यह पुस्तक लिखी थी ।

परम विद्योत्साही राजा साहब भिनगा की इच्छा और उदारता से यह पुस्तक सभा द्वारा प्रकाशित की गई है । उन्हीं के इच्छानुसार मूल पुस्तक के बीच बीच के कुछ अंश अनुवाद में छोड़ दिए गए हैं । अवशिष्ट में "तअल्लुकेदारों के लिए कुछ अलग बातें" राजा साहब की ओर से बढ़ाई गई हैं जिनमें उनकी प्रबंधकुशलता का अच्छा परिचय मिलता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि अनुवाद की भाषा बहुत ही सरल रक्खी गई है ।

काशी
२२ अप्रैल १९१३ } अनुवादक

विषय-सूची

राज्यप्रबंध-शिक्षा

चंदा -राजाओं के पास सभा समाजों या और अन्य कार्यों के लिए सहायता या चंदे के लिए सैकड़ों प्रार्थनाएँ पहुँचती हैं। कोई अपनी किताब के प्रकाशित हो जाने पर उसकी कुछ पतियाँ खरीदे जाने की प्रार्थना करता है, कोई मंदिर, घाट, या धर्मशाला बनाने के लिए सहायता माँगता है; कोई घुड़दौड़ के लिए कुछ चंदा चाहता है; इसी प्रकार स्कूल, अस्पताल, नाटक, घोड़ों की नुमाइश, सूक्ष्मकला, नए व्यवसाय आदि अनेक कार्यों में महाराज से उदारता दिखाने की प्रार्थना की जायगी।

यह तो साफ प्रकट है कि कोई राजा या महाराजा इन सारी प्रार्थनाओं को पूरा नहीं कर सकता है। इसलिए राजा महाराजाओं को बहुत समझ बूझकर काम करना होता है। यों तो इस प्रकार की बातें सामने आने पर प्रत्येक के गुण दोष का अलग अलग विचार करना होता है पर साधारणतः नीचे लिखी बातों का विचार रखना चाहिए—

पहले तो यह याद रखना चाहिए कि धन जो कि चंदे या सहायता में दिया जायगा वह राज्य की प्रजा से उगाहा हुआ

है इससे बिना सोचे विचारे मनमानी रीति से नहीं दिया जा सकता। यह धन ऐसे ही कार्यों के लिए दिया जाना चाहिए जिन कार्यों से किसी न किसी रूप में उस प्रजा को लाभ पहुँच सकता हो।

उन चंदों की अपेक्षा जो राज्य के बाहर खर्च किए जायंगे उन चंदों का देना अच्छा है जिनका राज्य के भीतर ही व्यय होगा। गरीबों को लाभ पहुँचानेवाले कामों में चंदा देना अमीरों को लाभ पहुँचानेवाले कामों मे चंदा देने से अच्छा है। दुःख दूर करनेवाली बातों में चंदा देना सुख बढ़ानेवाली बातों में चंदा देने से अच्छा है।

चंदे मे बहुत ज्यादह रुपया न देना चाहिए, एक हिसाब से देना चाहिए, जिसमें और लोगों को भी चंदा देने की आवश्यकता रहे। यदि एक ही राजा ने बहुत ज्यादह रुपया दे दिया तो और लोगों को यह कहने का अवसर मिल जायगा कि 'अमुक राजा ही ने इतना रुपया दे दिया जो इस कार्य के लिए बहुत है फिर हमको चंदा देने की क्या आवश्यकता है।"

जिस कार्य के लिए जो कुछ चंदा दिया जाय वह उसके लाभों पर विचार करके दिया जाय, दूसरों की देखा देखी आन में आकर वा माँगनेवाले के दबाव में पड़कर नहीं।

जो कुछ देना हो उसे या तो एकमुश्त दे दे या किस्त बाँध कर दे दे, राज्य के सिर मासिक या वार्षिक चंदा मढ़ देना अच्छा नहीं क्योंकि ऐसा करने से जब राज्य की

अवस्था बदलने या अन्य किसी कारण से चंदे का बंद कर देना जरूरी समझा जायगा तब उसके बंद करने में मुशकिल पड़ेगी। ऊपर लिखे सिद्धांतों को समझाने के लिए कुछ दृष्टांतों का दे देना उचित है।

मान लीजिए बड़ौदा के महाराज से बंगलोर, बंबई या बड़ौदा राज्य के बाहर किसी और स्थान में होनेवाली घुड़दौड़ के लिए चंदा माँगा जा रहा है। ऐसी दशा में महाराज गायकवाड़ को चंदा नहीं देना चाहिए। ख़ास बड़ौदा में भी ऐसी बातों में कम ही ख़र्च करना चाहिए क्योंकि बड़ौदा के लोगों को घुड़दौड़ आदि का इतना शौक़ नहीं।

यूरोप या अमेरिका के कला-कौशल की उन्नति के लिए बड़ौदा को चंदा देने की ज़रूरत नहीं।

बड़ौदा राज्य के भीतर किसी नदी पर बननेवाले घाट के लिए बड़ौदे का चंदा देना जितना उचित है उतना गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि के घाट के लिए नहीं।

निज का पत्रव्यवहार—हर प्रकार के लोग राजा महाराजाओं के पास तरह तरह की चिट्ठियाँ भेजा करते हैं। राजा महाराजाओं को इनका उत्तर बहुत समझ बूझकर देना चाहिए। निज का पत्रव्यवहार व्यर्थ बहुत बढ़ने न पावे। नियम तो यह होना चाहिए कि राजा महाराजा निज के पत्र बहुत कम भेजा करें। यह अच्छी बात नहीं है कि मामूली आदमी इधर उधर उनके पत्र दिखाकर कहते फिरें कि

हम महाराजा साहेब से पत्र व्यवहार करते हैं। कोई बात जब बहुत साधारण हो जाती है तब उसकी क़दर जाती रहती है।

इस बात का प्रबंध होना चाहिए कि राजा महाराजा जो चिट्ठियाँ भेजा करें उनकी नक़ल रक्खी जायँ। ऐसा करना अनेक प्रकार से लाभदायक है। एक ऐसा भी नौकर होना चाहिए जो महाराज साहब के पास आए हुए पत्रों को अच्छी तरह सँभाल सहेजकर रक्खे। कभी कभी बहुत छोटी बातें भी बड़े काम की निकल आती हैं। इससे इन पत्रों के विषय में ऐसा प्रबंध रहना चाहिए कि वे काम पड़ने पर चट मिल जायँ। बहुत से पत्र तो कर्मचारी लोग राजा महाराजाओं की ओर से लिखा करते हैं। इस बात की बड़ी चौकसी रहनी चाहिए कि वे कर्मचारी अपनी ओर से कुछ घटा बढ़ाकर न लिखने पावें और न ऐसी भाषा रखने पावें जैसी भाषा रखने का अभिप्राय वा इच्छा महाराज की न हो। जितने पत्र महाराज की ओर से लिखे जायँगे उन सबके ज़िम्मेदार महाराज होंगे, इसी से इतनी चौकसी चाहिए। नियम तो यह होना चाहिए कि ऐसी चिट्ठियों के मसविदे महाराज खुद देख लिया करें और उन पर अपने दस्तखत का चिह्न बना दिया करें जिसमें किसी तरह की भूल न रह जाय।

अच्छी सामग्री—महाराज की ओर से जानेवाले पत्र बहुत ही बढ़िया कागज़ पर हों। स्याही और लिफाफे आदि

भी अच्छे से अच्छे मेल के हों। हर एक वस्तु साफ सुथरी और महाराज के उच्च पद के योग्य होनी चाहिए।

भेंट मुलाकात—राजा महाराजाओं का किसी के यहाँ खुद मिलने जाना बड़ी ही प्रतिष्ठा की बात है। इस भेंट मुलाकात को इतना न बढ़ावे कि वह कोई बड़ी बात ही न समझी जाय। राजा महाराजाओं को यह न चाहिए कि जब जिसके यहाँ हुआ चले गये। मेरा मतलब राजघराने को छोड़ और दूसरे घरानों में व्याह शादी आदि अवसरों पर जाने से है। परस्पर जाने आने की जो रीति चली आई है उसका पालन करना तो ठीक ही है। पर इस प्रकार का नया व्यवहार बहुत समझ बूझकर खोलना चाहिए।

बिना जाने सुने आदमी—यदि कोई नया आदमी महाराज साहेब से भेंट करना चाहे तो एक आदमी ऐसा चाहिए जो उसे महाराज के सामने पेश करे। यह एक नियम होना चाहिए कि नए आदमी महाराज के सामने परिचय के साथ पेश किए जायें। ऐसा न होने से हर तरह के भले बुरे आदमियों की पहुँच महाराज तक हो जायगी और यह बात मर्य्यादा के विरुद्ध ही नहीं बल्कि हानि पहुँचानेवाली होगी। यह नहीं कि जो चाहे सो लोगों को महाराज के सामने पेश किया करे। इस काम पर कोई प्रतिष्ठित और गंभीर आदमी रहना चाहिए जो अपनी ज़िम्मेदारी को समझे। उसके ऊपर इस बात का ज़िम्मा रहे कि वह अयोग्य मनुष्यों

को महाराज के पास न लावे। ऐसे आदमियों की महाराज तक पहुँच न होनी चाहिए जिनका चालचलन बुरा हो, वा जिनकी गिनती भलेमानुसों में न हो, वा जो अपनी चाल-बाजियों से बढ़ना चाहते हों।

पेश करनेवाले को चाहिए कि किसी नए आदमी को महाराज के सामने लाने के पहले उसकी भलमनसाहत आदि के विषय में अपना जी भर ले। जब कोई नया आदमी महाराज से मिलने आवे तब यह आवश्यक है कि महाराज को उससे मिलने के पहले उसके संबंध में कुछ जानकारी हो जाय जिसमें श्रीमान् को यह मालूम रहे कि उससे कैसे मिलना होगा और क्या क्या बातें करनी होंगी।

वादे—बहुत से लोग राजा महाराजाओं से अनेक प्रकार की प्रार्थनाएँ किया करते हैं। राजा महाराजाओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे चटपट कोई बात न तै कर डालें और न बिना सोचे विचारे कोई वादा कर बैठें। अच्छा तो यह है कि किसी विषय में कोई मत प्रकाशित करने वा पक्का वादा करने के पहले महाराज विचार और सलाह करने के लिए पूरा समय ले लिया करें। ऊँचे पद और अधिकार-वाले मनुष्यों को बहुत समझ बूझकर चलना पड़ता है।

नौकर चाकर—राजा और महाराजाओं को चाहिए कि नीच नौकरों को बहुत मुँह न लगाएँ। उनसे दूर ही का व्यवहार अच्छा है जिसमें वे केवल अपने काम से काम रक्खें।

नीच नौकरों को एक ऐसे अफ़सर की मातहती और निगरानी में रखना चाहिए जो इस बात की देखभाल रक्खे कि वे अपना अपना काम अच्छी तरह करते हैं। ऐसे अफ़सर को नौकरों के ऊपर कुछ इख़्तियार देना चाहिए जिसमें वे उससे कुछ आसरा भी रक्खें और उसका डर भी मानें।

नीच नौकरों को महाराज की बातचीत सुनने और उसे इधर उधर फैलाने से रोकना चाहिए। यदि इस बात की कड़ी चौकसी न रक्खी जायगी तो ये लोग इस प्रकार की ख़बरें बेचा करेंगे।

ऐसे नौकर राज्य के सरदारों, अफ़सरों, कर्मचारियों, सेठ साहूकारों या ऐसे ही और लोगों के पास भेंट करने वा किसी न किसी बहाने इनाम इकराम माँगने न जाने पावें। राजा के नौकरों का इस प्रकार रुपया कमाना राजा की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है और इससे लोगों को तंग भी होना पड़ता है।

राजा से भेंट मुलाकात करने का प्रबंध ऐसा होना चाहिए कि भेंट होना या न होना छोटे नौकरों की कृपा वा अकृपा पर न रहे।

नीच नौकर कभी राजा महाराजाओं से वा राजा महाराजाओं के सामने ऐसी बातें न करने पावें जिनसे उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं और जो उनकी हैसियत के बाहर हैं। जैसे नौकरों का राजाओं के सामने राजकाज के मामलों में बातचीत करना वा मंत्रियों के गुण दोष बतलाना ठीक नहीं है। इस प्रकार की अनधिकार चर्चा का फल बुरा होता है।

खिदमतगारों का यह काम न होना चाहिए कि वे नए और बिना जाने बूझे आदमियों को महाराज से मिलावें या किसी का कोई प्रार्थनापत्र महाराज के हाथ में दें।

ऐसे नौकरों पर इस बात की ताकीद रहे कि वे महाराज से मिलनेवालों तथा अन्य लोगों से नम्रता का व्यवहार करें।

जब महल में किसी नौकर चाकर की या और किसी की अकस्मात् वा बुरी गति से मृत्यु हो अथवा महाराज को उसका मृत्यु के विषय में कुछ संदेह हो तुरंत उसकी लाश की चीड़-फाड़ वा डाक्टरी परीक्षा करानी चाहिए जिसमें उसकी मृत्यु का ठीक कारण मालूम हो जाय और लिख लिया जाय। व्यर्थ के अपवादों और संदेहों को दूर करने के लिए यह आवश्यक उपाय है।

तनख़्वाहें—जहाँ तक हो सके महल के नौकर चाकरों की तनख़्वाह नक़द मुक़र्रर होनी चाहिए। इसमें सबको सुबीता है। सीधा और रसद इत्यादि बाँधने से बहुत सी बुराइयाँ होती हैं।

महल के नौकर चाकर एक प्रकार से अपने निज के हैं। पर उन्हें भी यह विश्वास रहना चाहिए कि जब तक वे अच्छी तरह काम करते जायँगे तब तक बराबर लगे रहेंगे। मतलब यह कि वे बिना किसी बात के यों ही जब मौज हुई तब छुड़ा न दिए जायँ। यदि वे अच्छा काम करें तो मौक़े से उनकी तरक्क़ी भी हो।

ख़ास सेवा में रहनेवाले ऐसे नौकरों को जिनसे महाराज को दिन रात काम पड़ता है अच्छी तनख़्वाहें मिलनी चाहिएँ। उनके साथ बर्ताव भी ऐसा होना चाहिए जिससे वे महाराज के ऊपर बड़ी श्रद्धा भक्ति रक्खें। कभी उनसे कोई बहुत अच्छा काम बन पड़े तब उनको इनाम भी मिलना चाहिए जिससे उनका उत्साह बढ़े। राजकुमारों और रानियों के सेवकों वा दासियों के साथ भी यही होना चाहिए।

अपराध— ऐसे नौकरों के छोटे छोटे अपराधों को बहुत ज्यादह ध्यान में न लाना चाहिए और न उनके लिए उन्हें कड़ी कड़ी सज़ाएँ देनी चाहिए। सब नौकरों से कुछ न कुछ अपराध हो ही जाया करते हैं। ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि वे ऐसे छोटे अपराधों से आगे न बढ़ने पावें।

उनका दंड—यदि कोई महल का सेवक ऐसा आचरण करे जिससे उसको दंड देना आवश्यक हो तो भी उचित यही है कि उसके दंड के लिए स्वयं महाराज कोई कार्रवाई न करें। दंड या तो महल का कोई बड़ा अफ़सर दे या अदालत दे, जैसा मामला हो। यह इसलिए है जिससे महाराज से व्यर्थ किसी को द्वेष न होने पावे।

मूल भृत्य—महल में जहाँ तक हो पुश्तैनी नौकरों को रखना ही अच्छा है क्योंकि उन्हें राजपरिवार के साथ अधिक स्नेह रहता है। यदि कोई बुड्ढा नौकर मर जाय, अथवा रोग वा बुढ़ापे आदि के कारण अशक्त हो जाय तो उसके लड़के,

भाई वा और किसी संबंधी को कोई काम दे देना अच्छा है। पर राज्य के कर्मचारी नियुक्त करने में इस पैतृक सिद्धांत पर चलना सर्वथा अनुचित है क्योंकि राज्य के कामों में विशेष गुणों की आवश्यकता रहती है।

हाँ कोई कोई राज्य संबंधी कार्य्य ऐसे भी होते हैं जिनके करनेवालों के वंशधरों में इनके योग्य गुण आ जाते हैं, जैसे कि पटवारी और कानूनगो यहाँ पैतृक सिद्धांत का काम में लाना अनुचित नहीं है।

कुचक्री—सभी राज-दरबारों में थोड़े बहुत कुचक्री (चाल-बाज) रहते हैं। राजा महाराजाओं को सावधान रहना चाहिए कि ऐसे लोगों के जाल में न फँसे। जहाँ कोई राजा गद्दी पर बैठा, बल्कि उसके कुछ पहिले ही से, उनके दांव पेंच चलने लगते हैं। इससे यहाँ उनके संबंध में दो चार बातें आवश्यक हैं।

कुचक्री लोग अपने मतलब के बड़े पक्के होते हैं और उनके जी में अच्छी अच्छी बातें नहीं जमी रहतीं। वे चुपचाप इधर उधर की बातें बहुत करना चाहते हैं। वे झूठी और बिना सोची समझी बातें मुँह से निकालते हैं। छोटी सी बात को भी ख़ूब बढ़ाते हैं, राई का पहाड़ करते हैं। मामलों पर झूठी रंगत चढ़ाते हैं। वे सदा ख़ुशामद और चापलूसी द्वारा अपने को प्रिय बनाने के यत्न में रहा करते हैं।

यदि राजा महाराजा इन लक्षणों को ध्यान में रक्खें और उनकी एक एक बात पर दृष्टि दें तो कुचक्री को पहचान सकते

हैं। राजाओं को चाहिए कि जब कभी वे इस ढंग से कुचक्री को पहचान लें तब फिर उसकी ओर कान न करें और उसे दूर रक्खें, जितना ही कम सरोकार राजा महाराजा ऐसे लोगों से रक्खेंगे उतना ही उनके लिए अच्छा होगा।

यदि किसी के विषय में यह मालूम हो कि वह कभी कुचक्री रहा है तो यह समझना चाहिए कि वह अब भी कुचक्री है। हाँ यदि इस बात का कोई पक्का प्रमाण मिल जाय कि वह बिलकुल सुधर गया है तो दूसरी बात है। साधारण नियम यह होना चाहिए कि राजा महाराजा उन लोगों को सदा दूर रक्खें जो कभी कुचक्री रह चुके हों।

जब कभी महाराज को ऐसे लोग जिनको महाराज अपना सच्चा हितैषी और विश्वासी सलाहकार समझते हों यह निश्चय दिलावे कि अमुक मनुष्य कुचक्री है तो महाराज की भलाई इसी में है कि उसकी बात मान लें और उस कुचक्री को दूर रक्खें। कम से कम उस पर कड़ी दृष्टि तो ज़रूर रक्खें।

ऊपर लिखी बातों पर चलने से राजा महाराजा सब कुचक्रियों से नहीं तो भी बहुतों से बचे रह सकते हैं।

अब तक जो कुछ कहा गया है वह इस विषय के लिए काफ़ी नहीं मालूम पड़ता। इससे इस विषय को और अधिक स्पष्ट करने के लिए नीचे कुचक्रियों के लक्षण और सच्चे हितैषियों के लक्षण आमने सामने दिए जाते हैं।

कुचक्री	सच्चा शुभचिंतक
(१) कुचक्री वास्तव में हितैषी नहीं होता है बल्कि अपने को हितैषी प्रकट किया करता है।	(१) सच्चा हितैषी सच्चा हितैषी है।
(२) अथवा यों कहिए कि कुचक्री एक खोटी धातु है जिस पर सोने की कलई की रहती है।	(२) सच्चा हितैषी खरा और ठोस सोना है।
(३) कुचक्री की पिछली कार्रवाइयाँ प्रकट करती हैं कि वह कुचक्री है।	(३) सच्चे हितैषी के पिछले काम यह प्रकट करते हैं कि वह निर्दोष है।
(४) कुचक्री को सब भले आदमी जानते हैं कि वह कुचक्री है।	(४) इसी प्रकार सच्चे हितैषी को सब भले आदमी समझते हैं कि वह सच्चा हितैषी है।
(५) कुचक्री प्रायः असंतोषी होता है और समझता है कि मेरे साथ अन्याय हुआ है और मैं बढ़ने नहीं पाता हूँ।	(५) सच्चे हितैषी को कोई विशेष असंतोष नहीं होता है, जैसे और सब लोग वैसे ही वह भी जिस दशा में रहता है प्रसन्न रहता है।

(६) कुचक्री प्रायः अपनी समझ और योग्यता को सबके ऊपर समझता है ।

(६) सच्चा हितैषी जितना करता है अपने को उतना ही मानता है ।

(७) कुचक्री जो कुछ करता है वह अधिकतर अपने स्वार्थ के लिए ।

(७) सच्चा हितैषी सब कुछ अपने स्वार्थ ही के लिए नहीं करता ।

(८) कुचक्री जो कुछ करता है वह अपने को कोई बड़ा लाभ पहुँचाने ही के अभिप्राय से करता है—जैसे रियासत में कोई ऊँचा पद पाने के लिए या ऐसी ही और बातों के लिए ।

(८) सच्चा हितैषी जो कुछ करता है वह राजा और प्रजा के हित के लिए ।

(९) कुचक्री घुमा फिराकर ऐसी ही बातें करेगा जिनसे किसी प्रकार उसको लाभ पहुँचने की राह खुलती हो ।

(९) सच्चा हितैषी ऐसी ही चर्चा नहीं छेड़ेगा जिसमें उसका कुछ न कुछ मतलब हो बल्कि सब तरह की बातचीत करेगा ।

(१०) कुचक्री किसी प्रबंध वा कार्रवाई के दोष दिखलाने के लिए उतनी बातें नहीं

(१०) सच्चा हितैषी प्रबंध और कार्रवाइयों के दोष अधिक दिखलाया करेगा,

करेगा जितनी लोगों के दोष दिखलाने के लिए।

लोगों के कम।

(११) कुचक्री बुराई करने के लिए उन लोगों की बात सबसे अधिक लावेगा जो उसके लाभ में बाधक होते होंगे।

(११) सच्चा हितैषी प्रायः सब लोगों के बारे में बातचीत करेगा।

(१२) कुचक्री कभी किसी बात में ऐसे लोगों की प्रशंसा नहीं करेगा बल्कि हर तरह से उनकी निंदा ही किया करेगा।

(१२) सच्चा हितैषी जो प्रशंसा के योग्य होगा उसकी प्रशंसा किए बिना न रहेगा। वह अधिक विवेक से काम करेगा।

(१३) ऐसे लोगों के विरुद्ध कुचक्री जो कुछ कहेगा वह ठीक ठिकाने के साथ नहीं। "वे बड़े खोटे आदमी हैं, वे विश्वासघाती हैं, वे बुराई कर रहे हैं, वे स्वार्थी हैं, वे अँगरेज़ी सरकार के खैरख्वाह बनने के लिए राज्य का अहित कर रहे हैं", इत्यादि इत्यादि।

(१३) सच्चा हितैषी विशेष विशेष कार्य्य बतलावेगा जिनको वह बुरा समझता है। वह यदि दोष निकालेगा तो ठीक ठीक बतला देगा कि किस कारण।

(१४) कुचक्री जो बात होगी उसमें अपना कुछ न

(१४) सच्चा हितैषी जो मत प्रकट करेगा वह अधिक

कुछ बुरा अनुमान लड़ावेगा। जैसे, यदि किसी साल मालगुज़ारी ज्यादा आई है तो वह कहेगा कि प्रजा मालगुज़ारी बढ़ने से त्राहि त्राहि कर रही है। यदि मालगुज़ारी कम आई है तो वह कहेगा कि कुप्रबंध के कारण राज्य की इतनी हानि हुई है। यदि ख़र्च बढ़ गया है तो वह कहेगा कि यह सब बे-परवाही और फ़ज़ूलख़र्ची का फल है। यदि ख़र्च घट गया है तो वह कहेगा कि बात बात में कमी और कंजूसी की गई है।

निष्पक्ष होगा। वह इसका विचार रक्खेगा कि कमी बेशी वा उलट फेर कहां उचित कारणों से है और कहाँ अनुचित।

(१५) कुचक्री को कुछ करते आगा पीछा नहीं। वह अपने मतलब के लिए किसी बात वा मामले को और का और बतलाकर इस प्रकार घुमावेगा कि सारा दोष उनके सिर पड़े जो उसके लाभ में बाधक होते हों।

(१५) सच्चा हितैषी धर्म के साथ जैसा होगा वैसा कहेगा।

(१६) कुचक्री अपना मतलब साधने के लिए सरासर झूठ तक बोलेगा पर ऐसा झूठ जो जल्दी पकड़ा न जा सके। जैसे वह अपने विरोधियों पर तरह तरह के झूठे अपवाद लगावेगा, उनकी नीयत बुरी बतलावेगा।

(१६) सच्चा हितैषी कभी झूठ न बोलेगा, सदा सच बोलेगा। यदि वह किसी कार्रवाई में दोष भी निकालेगा तो भी यदि करनेवाले की नियत अच्छी होगी तो उसकी प्रशंसा करेगा।

(१७) कुचक्री सदा अपने विरोधियों की ऐसी भूल चूक पकड़ा करेगा जो अच्छे से अच्छे आदमियों से भी हो जाया करती है और उसे जान बूझकर की हुई खोटाई बतलावेगा।

(१७) सच्चा हितैषी अधिक उदारता से काम लेगा। वह इस बात को समझेगा कि बड़े से बड़े आदमियों से भी भूल हो जाया करती है। वह समझेगा कि कौन बात जान बूझकर की गई है और कौन भूल से।

(१८) कुचक्री को अँधेरे में निशाना मारना बहुत अच्छा लगता है। वह राजा महाराजों के पास अधिकतर रात को मिलने जाया करता है। वह सदा यही चाहता

(१८) सच्चा हितैषी ये सब चालें नहीं चलेगा।

है कि हम महाराज से अकेले में मिलें। वह इस प्रकार कानाफूसी करता है मानो कोई बड़े भेद की बात कह रहा है, तरह तरह की बातें सुझाता है, आगम बतलाता है कि देखिएगा जो मैं कहता हूँ वही होगा। वह यह जानता है कि अपने विपक्षियों की जितनी बुराई अभी उसने बतलाई है वह कुछ नहीं है—जितनी वह जानता है उसका एक टुकड़ा भी नहीं है। वह महाराज से बार बार विनती करेगा कि जो कुछ उसने कहा है वह और किसी को मालूम न हो और इस ढंग से महाराज को सच्ची बात का पता लगाने से रोकेगा।

(१६) जब कुचक्री को राजकाज के मामलों में अपने विरोधियों के विरुद्ध कुछ कहने

(१६) सच्चा हितैषी ऐसे पतित कर्म नहीं करेगा। वह तो जहाँ तक होगा महाराज

सुनने को नहीं मिलता तब वह परस्पर के व्यवहार की छोटी छोटी बातों को लेकर महाराज का मन उनकी ओर से खट्टा करना चाहता है। जैसे, कभी वह कहता है कि "अमुक अधिकारी तो महाराज को कुछ समझता ही नहीं। उस अफ़सर ने उस दिन महाराज की शान मे यह कहा है"—इत्यादि। यदि पूछा गया कि 'उस अफ़सर ने ऐसा कहाँ कहा ?' तो जवाब मिलेगा कि "घर पर अपने एक मित्र से कहा था'; प्रश्न—क्या वह मित्र पूछने पर मुझसे सब बतलावेगा ? उत्तर—"भला वह अपने मित्र से विश्वासघात करेगा ?" प्रश्न—"तब तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ ?" उत्तर—"उस अफ़सर के एक नौकर ने उन बातों को सुन

को यही सलाह देगा कि "ऐसी बातों की ओर क्षण भर भी कान न दीजिए! अकेले में इधर उधर के लोग जो बातें कह जायँ उन्हें, चाहे वे सच्ची भी हों, न सुनिए क्योंकि किसी अफ़सर की भलाई बुराई की जाँच तो उसके सरकारी (राजकाज) कामों से होती है।

लिया"। प्रश्न-"क्या बुलाने पर मेरे सामने वह नौकर सब हाल कहेगा ?" उत्तर—"वह नौकर अपने मालिक को कैसे फँसावेगा ?" प्रश्न-"तब फिर तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?" उत्तर-"जब महाराज इतना पूछते हैं तब सब खोलकर कहना ही पड़ता है। उस अफ़सर के नौकर और मेरे नौकर के बीच बड़ा हेल मेल है। इस प्रकार मेरे नौकर को भी मालूम हुआ और उसने मुझसे कहा"। प्रश्न—"क्या तुम्हारा नौकर मुझसे सब ज्यों का त्यों कहेगा ?" उत्तर—"यह तो मैं ठीक कह नहीं सकता पर हाँ, यदि उसे अपने बचाव का विश्वास हो जायगा तो क्यों नहीं कहेगा ?" इस पर शायद, महाराज उस कुचक्री के नौकर को बुला

भेजें और उससे कहें "तुम्हारा कुछ न होगा तुम सब बातें कह दो तो तुम्हें इनाम मिलेगा।" उसको क्या? जो कुछ उसके मालिक ने सिखा पढ़ाकर भेजा था उसने कह दिया। अब तो महाराज के निकट बात प्रमाणित हो गई क्योंकि वे साक्ष्य (गवाही) के नियम आदि तो जानते नहीं। इस पर कुचक्री महाशय थोड़ा और रंग जमाते हैं और कहते हैं— "संयोग की बात थी, इस बार मामला महाराज के सामने साबित हो गया। बहुत करके तो ऐसी बातें साबित नहीं की जा सकतीं। यदि महाराज ऐसी कड़ी जिरह किया करेंगे तब तो बड़ी मुशकिल होगी। इससे अच्छा तो यह है कि महाराज से कोई बात कही ही न जाय।" महा-

राज को अंत में कहना पड़ता है "कोई हर्ज नहीं, मुझे अब निश्चय हो गया। तुम निःसंकोच जो बातें हों मुझसे कहा करो"। इस प्रकार सहारा पाकर कुचक्री महाशय बूँद पर बूँद विष उगलते जाते हैं यहाँ तक कि वह अफ़सर महाराज की दृष्टि से गिर जाता है और उसके बुरे दिन आ जाते हैं।

(२०) एक और लक्षण कुचक्री मनुष्य का यह है कि वह राजा महाराजाओं को प्रसन्न करने के लिए सब कुछ करने को तैयार रहता है। जो मत महाराज का होगा उसके विरुद्ध कभी वह अपना मत प्रकट न करेगा। कोई तुच्छ से तुच्छ बात भी महाराज के मुँह से निकलेगी तो वह उसकी तारीफ़ में ख़ूब वाह वाह करेगा—पर हाँ वह बात

(२०) सच्चा हितैषी खुशामद और चापलूसी से सदा दूर रहेगा। वह बेधड़क अपनी राय कहेगा चाहे वह महाराज की राय से मिले चाहे न मिले। वह जो कुछ करेगा अपनी मर्य्यादा का ध्यान रखकर। वह महाराज के प्रधान मित्रों और संबंधियों से नम्रता का व्यवहार करेगा पर उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए उस प्रकार के उद्योग न

किसी प्रकार उनके पक्ष की न हो जिनके विरुद्ध वह सब चालें चल रहा है। वह महाराज के प्रधान मित्रों और संबंधियों से मित्रता बढ़ाने के लिए अनेक ढंग रचेगा, उन्हें रुपया उधार देगा, उनके पास नजरें भेजेगा, अधिकार पाने पर उनकी हर प्रकार से सेवा करने का वचन देगा।

करेगा जिस प्रकार के कुचक्री करता है।

ऊपर लिखे लक्षणों को राजा महाराजा यदि पूरी तरह समझ लें तो बहुत अच्छा हो। मैंने अपने बहुत दिनों के अनुभव और विचार की बातें कही हैं। इनके द्वारा वे जान सकेंगे कि कौन कुचक्री है और कौन सच्चा हितैषी, कौन पीतल है और कौन सोना। पर उन्हें थोड़े धैर्य्य और ध्यान के साथ परखना होगा। किसी मनुष्य के रंग ढंग, आशय, लक्ष्य और कथनों को अच्छी तरह ताड़ना होगा, उन्हें ऊपर लिखी कसौटियों पर कसना होगा। राजा महाराजों को इसका काम बहुत पड़ता है, उन्हें इस तरह के आदमियों को परखना रहता है। पहले तो यह काम थोड़ा कठिन जान पड़ेगा। पर अभ्यास करने पर सुगम हो जायगा और राजा महाराजा चटपट अपनी स्वाभाविक बुद्धि से लोगों को परखने लगेंगे।

कुचक्री जो कुछ कहेगा उसकी एक पहचान यह भी है। वह या तो कहेगा कि ऐसा ऐसा मामला है या कोई राय देगा।

ऐसे इधर उधर के लोगों की राय को तो कुछ समझना ही न चाहिए। यदि राजा महाराजाओं को राय ही लेना है तो विश्वासपात्र और जाने बूझे आदमियों से लें।

अब रहीं वे बातें जिनका घटित होना बतलाया जाता है।

ये बातें या तो सामान्य और बे ठीक ठिकाने की होंगी अथवा विशेष और पते की।

सामान्य और बिना ठीक ठिकाने की बातें तो किसी कार्य की नहीं, उनकी ओर तो ध्यान ही न देना चाहिए।

रह गईं विशेष और पते ठिकाने की बातें। यदि ये काम की हों और संभव जँचें अथवा प्रमाण के साथ हों तो राजा महाराजाओं को उनकी ओर कुछ ध्यान देना चाहिए।

ऊपर कही हुई बातों को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक दृष्टांत दिया जाता है। मान लीजिए कि कोई कुचक्री किसी महाराज से कहता है—"सोहनलाल बहुत बुरा जज है। वह घूस लेता है। उस मुकदमे में अभी उस दिन उसने बनवारी से १०००) रु० लिए।" इन तीनों वाक्यों में से पहिले में तो एक प्रकार की राय दी गई है जिसे कुछ समझना ही न चाहिए। दूसरे वाक्य में एक सामान्य और बिना ठीक ठिकाने की बात कही गई है जो किसी अर्थ की नहीं। तीसरे

वाक्य में अलबत्त: एक विशेष और पते ठिकाने की बात कही गई है। यदि कहनेवाला ख़ुद गवाही देने वा गवाह बतलाने को तैयार है तो महाराज अपने मंत्री को सब बातों की ठीक ठीक तहकीकात करके इत्तला करने की आज्ञा दें।

ऊपर जो दृष्टांत दिया गया है वह बहुत ही सीधा है, और केवल समझाने के लिए है। पर इस प्रकार की बातें जो (कुचक्रियों द्वारा) कही जाती हैं वे प्राय: लंबी चौड़ी और पेचीली होती हैं। उनकी छानबीन ऊपर लिखे उपायों से अच्छी तरह हो तब पता लगेगा कि कौन कौन सी प्रयोजनीय बातें विशेष और पते ठिकाने की हैं जिन पर ध्यान देना होगा, मैंने कई एक कुचक्रियों को देखा है जो इस छान बीन वा परीक्षा में नहीं ठहर सके हैं।

राजा महाराजों को छानबीन का यह ढंग अच्छी तरह जान लेना चाहिए और उसे बराबर काम में लाना चाहिए, यदि वे ऐसा न करेंगे तो लंबी चौड़ी बातों के चक्कर में आ जायँगे और चालबाजों के हाथ से धोखा खायँगे।

क्रोध—अच्छे से अच्छे मनुष्यों को कभी कभी क्रोध आ जाता है। और राजा महाराजों का पद ऐसा है कि नित्य उनके धैर्य्य और स्वभाव की परीक्षा हुआ करती है। राजा महाराजा राज्य में सबसे बड़े आदमी होते हैं इससे बहुत थोड़े लोग ऐसे होंगे जो उनको किसी बात से रोक सकें। अंत में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि साधारण मनुष्यों के

क्रोध की अपेक्षा राजा महाराजों के क्रोध से बहुत अधिक हानि पहुँच सकती है।

इन बातों से प्रकट है कि राजाओं को क्रोध से कितना सावधान रहना चाहिए। जहाँ तक हो सके क्रोध को पास ही न आने दे। बार बार यत्न करने से सब बातों में शांति और धैर्य्य रखने की टेव पड़ जायगी।

यदि महाराज देखें कि बहुतेरा यत्न करने पर भी क्रोध उनमें बना हुआ है तो अच्छा होगा कि अपने मन में इन विचारों को लावें।

क्रोध चित्त का एक ऐसा उद्वेग है जिससे थोड़ी देर के लिए मनुष्य पागल सा हो जाता है। उस उद्वेग की अवस्था में चित्त वेग के साथ एक ही ओर को टूटता है और उसे वे बातें नहीं सूझतीं जिनसे ठीक ठीक विचार किया जाता है। सारांश यह कि क्रोध में अत्यंत अनमोल और प्रयोजनीय विचार-शक्ति मारी जाती है।

चित्त की ऐसी दशा में यह करना चाहिए कि जिस बात पर क्रोध उत्पन्न हुआ है उसके विषय में न कुछ करे और न कुछ कहे। उस समय महाराज उसकी चर्चा ही छोड़ दें और चित्त को किसी दूसरी ओर ले जायँ। यदि सो जायँ तो बड़ी ही अच्छी बात है क्योंकि उससे बहुत शांति आती है। यह भी न करें तो घोड़े या गाड़ी पर दूर हवा खाने निकल जायँ, या कोई ऐसी पुस्तक पढ़ने लगें जिसमें मन लगे।

जिस बात से उद्वेग उत्पन्न हुआ है उससे चित्त को हटा लेना ही अच्छा है। यदि हो सके तो दस पाँच दिनों तक उसको फिर मन में न लावें।

इस सीधी सलाह पर चलने से राजा महाराजा बहुत से अनुचित कार्यों और कटु वचनों से बचे रहेंगे जिनके कारण राजकाज में कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं, वे अपने मित्रों और हितैषियों से हाथ धो सकते हैं और उनके विश्वासी नौकरों और कर्म्मचारियों का जी टूट सकता है।

दूसरों से राय कैसे लेनी चाहिए—यदि राजा महाराजों को किसी की राय लेनी हो तो उन्हें पहले अपनी राय कभी न कहनी चाहिए, इसका आभास तक न देना चाहिए। यदि जिसकी राय माँगी जाती है वह महाराज की राय पूछे भी तो जहाँ तक हो सके न कहना चाहिए।

इसके दो प्रधान कारण हैं—(१) यदि महाराज की राय पहले ही बतला दी जायगी तो संभव है जिसकी राय पूछी जा रही है वह विरुद्ध वा भिन्न राय देने में आगा पीछा करे और यदि दे भी तो दबी ज़बान से दे। पर किसी की राय लेने का मतलब तो होता है कि वह जहां तक हो सके जी खोलकर राय दे। (२) यह भी हो सकता है कि महाराज ने चट बिना दूसरों की राय जाने कोई राय बैठा ली और वह ठीक न हुई, महाराज के योग्य यह न होगा कि वे कोई

ऐसा कच्ची और बेठीक राय मुँह से निकालें जो कि उचित विचार और परामर्श के बाद छोड़ देनी पड़े।

दृढ़ता एक ऐसा गुण है जिसका सब आदमियों में होना अच्छा है पर विशेष कर उन लोगों में जिन्हें परमेश्वर ने राजा बनाया है। यदि किसी राजा में दृढ़ता का अभाव है तो उसके लिए राजकाज सँभालना बहुत ही कठिन होगा। उसकी राय कभी कुछ होगी, कभी कुछ। उसका उद्देश्य आज और होगा कल और। वह अभी कुछ और आशा देगा थोड़ी देर में कुछ और।

सच्ची दृढ़ता तो बातों को अच्छी तरह परखने, अच्छी तरह विचारने, और उनसे ठीक ठीक परिणाम निकालने से आती है। इस बात का ज्ञान कि हमने बातों को अच्छी तरह परखा है, सावधानी से विचारा है और उनसे ठीक ठीक परिणाम निकाला है चित्त को दृढ़ करता है। जब हम समझेंगे कि ये सब क्रियाएँ हम उचित रीति से कर चुके तब दृढ़ होंगे।

जिस राजा महाराजा ने स्वयं इन क्रियाओं को किया है उसका दृढ़ता रखना और दिखाना ठीक है।

पर राजा महाराजों के सामने हजारों मामले आते हैं इन सबमें उन क्रियाओं को आप करना उनके लिए असंभव है, तब क्या वे इन सब मामलों में अस्थिर-चित्त रहा करें। नहीं, यदि वे इन सब मामलों में अस्थिर-चित्त रहेंगे तो राज्य के काम बिगड़ जायँगे।

इन सब मामलों में राजा महाराजों को अपने विश्वास-पात्र और कर्त्तव्य-परायण मंत्रियों पर विश्वास करना चाहिए जिन्होंने स्वयं इन क्रियाओं को किया है। उन्हें ऐसे मामलों में ऐसे मंत्रियों की राय और सलाह मान लेनी चाहिए और तब उस राय और सलाह के अनुसार काम करने के लिए दृढ़ हो जाना चाहिए।

जो ऊपर कहा गया है वह एक बड़े काम का सिद्धांत है। राजा महाराजों को इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, यदि वे इसे अच्छी तरह नहीं समझे रहेंगे और उसके अनुसार काम नहीं करेंगे तो नित्य बड़े बड़े बेढब झंझटों में फँसेंगे और उनका नाकों दम रहेगा। बहुत कम मामले ऐसे होंगे जिनमें वे आप सब बातों का पता लगाकर उन्हें इकट्ठा कर सकें, उन पर विचार कर सकें और उनके विषय में ठीक ठीक निश्चय कर सकें। तब उन बहुत से मामलों में जिनमें वे आप इन क्रियाओं को नहीं कर सकते वे क्या करें? क्या वे अस्थिर-चित्त रहें? तब तो राज्य का सब काम ही चौपट होगा। तब क्या वे मनमाना परिणाम निकाल लें और उस पर जम जायँ। तब तो राज्य का काम और भी चौपट होगा। बड़े दुबधे की बात है।

इतिहास में बहुत से ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें राजाओं के इस सिद्धांत को न समझने और उस पर न चलने के कारण राज्य के काम चौपट हो गए हैं। जो राजा अपनी

दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध हो गए हैं वे इस सिद्धांत को अच्छी तरह जानते थे। वे जानते थे कि किस प्रकार विश्वासी और योग्य मंत्री चुनना, उनकी जँची हुई राय वा सलाह को मानना, और उस पर दृढ़ता दिखाना चाहिए.

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे यह प्रकट है कि दृढ़ता तभी एक गुण है जब वह ठीक ठीक परिणाम निकाल चुकने के बाद दिखाई जाय। ऐसी दृढ़ता यदि राजाओं में हो तो एक अमूल्य गुण है। पर जब दृढ़ता अयथार्थ परिणाम निकालने के बाद दिखाई जायगी तब वह गुण न रहेगी, अवगुण हो जायगी। तब वह हठ के सिवाय और कुछ न कहलावेगी।

दृढ़ता और हठ में प्रधान अंतर क्या है? दृढ़ता जिस बात में होती है वह बात ठीक परिणाम निकालने के बाद स्थिर की हुई होती है और हठ जिस बात का होता है वह बात अयथार्थ परिणाम निकालने के बाद स्थिर की हुई होती है। प्रत्येक राजा को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि वह दृढ़ता है, हठ नहीं है—उसके निकाले हुए परिणाम यथार्थ हैं, अयथार्थ नहीं। दृढ़ राजा बहुत भलाई कर सकता है। हठी राजा बहुत बुराई कर सकता है।

यह अंतर ध्यान देने योग्य है—दृढ़ता और हठ में जो अंतर है उसे सदा ध्यान में रखना चाहिए जिसमें ऐसा न हो कि राजा महाराजा हठ ही को दृढ़ता मान बैठें। दृढ़ता

गुण है, हठ अवगुण—गुण और अवगुण के बीच बहुत सी बातों में समानता होती है, इससे दुर्बल चित्त के राजा कभी कभी अवगुण को गुण मान बैठते हैं। पर दृढ़ चित्त के राजा अपनी शिक्षा के बल से और मंत्रियों की चेतावनी के सहारे गुण और अवगुण में जो मुख्य भेद है उसे समझते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि हम गुण का अनुसरण करें, अवगुण का नहीं।

ऊपर लिखी बातें यह भी सूचित करती हैं कि समझदार राजा यथार्थ बातें मानने के लिए तैयार रहते हैं अर्थात् यदि प्रमाण के साथ यह दिखलाया जाय कि उनकी राय ठीक नहीं है तो वे उसे बदलने के लिए तैयार रहते हैं। पर नासमझ राजा हठी होते हैं, यथार्थ बात मानने के लिए तैयार नहीं रहते, युक्ति और प्रमाण एक नहीं सुनते और अपने बेठीक निश्चय पर जमे रहते हैं।

बुद्धिमान राजा भारी मामलों में इस बात से अपना जी भरने के लिए कि उनके निश्चय ठीक हैं अपने विश्वासपात्र मंत्रियों की सलाह लेते हैं और उनके निश्चयों से अपने निश्चय का मिलान करते हैं। पर नासमझ राजा मंत्रियों से सलाह लेना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं, अयथार्थ निश्चय करते हैं और उसका बुरा फल भोगते हैं।

कोई एक मनुष्य, चाहे वह कैसा ही अनुभवी और योग्य हो, यह नहीं कह सकता कि किसी राजकाज के मामले में

उसने अकेले, बिना किसी की सलाह लिए, जो कुछ निश्चय किया है वह ठीक ही है। संभव है कि उसे बातों का ठीक पता न हो, उसने विचार में भूल की हो वा जिस अवस्था में कोई बात हुई हो उस पर ध्यान न दिया हो। किसी मामले में बात ठीक होगी एक, और झूठे निश्चय होंगे दस तरह के। इससे हर एक राजा के लिए, जो अपनी प्रजा को झूठे निश्चयों की बुराइयों से बचाना चाहता है, यह आवश्यक है कि वह ऊपर कहे हुए ढंग से अपने निश्चय की जाँच कर ले।

राज्य के पुराने अनुभवी मंत्री और दीवान आदि भी यदि दूसरों से सहायता न लें तो बातों को जानने और विचारने में बड़ी भारी भारी भूलें करें। राज्य-प्रबंध में उन्हें जो सफलता हुई है वह ऊपर लिखे सिद्धांतों पर चलने से।

किसी झूठे वा भ्रांत निश्चय पर जम जाना सचमुच बहुत बुरा है। कभी कभी कोई व्यक्ति ऐसा इसलिए करता है जिसमें लोग उसे दृढ़ समझें। पर यह सच्ची दृढ़ता नहीं है। यह झूठी दृढ़ता है। यह कोरा हठ है। लोगों को इसका पता बहुत जल्दी चल जाता है और वे उसे हठी और दंभी समझते हैं।

राजा महाराजों के लिए सबसे बुद्धिमानी की बात यह है कि वे झूठे निश्चयों पर कोई काम करने से बचे रहें। उन्हें चाहिए कि अपने निकाले हुए परिणामों को मंत्रियों की सभा में प्रकट करें जिसमें उनकी जाँच हो, उन पर वाद विवाद हो

और उनके विषय में पक्का निश्चय हो। यह सब चुपचाप होना चाहिए, बाहर के लोगों को इसकी कुछ ख़बर न हो। लोग तो किसी कार्य्य के फल को देखते हैं। यदि फल से यह प्रकट होता है कि झूठे निश्चयों पर महाराज कोई काम नहीं करते हैं तो लोग उनको बहुत अच्छा राजा कहेंगे, वे यह न देखने जायँगे कि किन उपायों से महाराज ऐसा करते हैं।

सारांश यह है कि हर तरह से इस बात का निश्चय कर लीजिए कि आपने जो परिणाम निकाला है वह ठीक है और तब उसके अनुसार दृढ़ता से कार्य्य कीजिए। इस प्रकार की दृढ़ता से काम लेना राजाओं में बड़ा गुण है।

इस विषय को समाप्त करने के पहले दो चार बातें और इसके संबंध में कहना चाहता हूँ।

कोरी दृढ़ता एक कठोर गुण है। व्यवहार में उसकी कठोरता को कुछ कोमल करना पड़ेगा। राजा को दृढ़ होने पर भी कृपालु और शीलवान् होना चाहिए। जो बात जैसी आ पड़ती है उसके विषय में इस अभिप्राय-सिद्धि के लिए वैसा करना होता है। यह अभ्यास की बात है और अभ्यास बराबर ध्यान रखने से पड़ जाता है। दृढ़ता की जो कठोरता है वह इस प्रकार कम हो सकती है कि जिसे आपकी दृढ़ता से कुछ दुःख पहुँचा हो उसे आप शांति और धैर्य्य के साथ समझा बुझा दें। उसे यह मालूम हो जाय कि आपने जो उसकी इच्छा पूरी नहीं की है वह शील न होने के कारण नहीं बल्कि

न्याय की दृष्टि से, राज्य-प्रबंध के सिद्धांतों के अनुसार, तथा जैसा बराबर होता आया है उसके विचार से, या ऐसे ही और किसी कारण से विवश होकर। उसे यह जता दिया जाय कि आपने जो किया वह आपका कर्तव्य था, उसके विरुद्ध आप कर ही नहीं सकते थे। यदि आपको इतना समझाने बुझाने का अवकाश न हो तो आप किसी ऊँचे कर्मचारी को ऐसा करने की आज्ञा दे सकते हैं। दूसरा उपाय दृढ़ता की कठोरता को धीमी करने का यह है कि जिसके विरुद्ध दृढ़ता दिखाई गई हो उसके साथ आप किसी और उचित ढंग से कोई उपकार कर दें। इस बात को स्पष्ट करने के लिए एक दृष्टांत बहुत है। मान लीजिए कि कोई कर्म्मचारी बुड्ढा और बेकाम हो गया है और इस कारण छुड़ा दिया गया है। वह आपके पास आकर बहुत कुछ कहता सुनता और गिड़गिड़ाता है। आप उसे एकबारगी दुतकार न दें। उसे समझावें कि आजकल यह कितना आवश्यक है कि राज्य का प्रबंध उत्तम हो और जब तक अशक्त कर्मचारी अलग नहीं होंगे तब तक राज्य-प्रबंध उत्तम होगा कैसे? उससे आप यह भी कहें कि हम सबके सब किसी न किसी दिन बुड्ढे और बेकाम हो जायँगे और हमारे स्थान पर नए लोग आवेंगे। यदि वह कर्मचारी इस योग्य है कि उस पर कुछ कृपा की जाय तो आप उसके लड़के को उसकी योग्यता के अनुसार किसी काम पर लगा दें। दृढ़ होकर भी दयालु और उपकारी होना बड़ी बात है।

मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि सच्ची दृढ़ता क्या है और झूठी दृढ़ता क्या है, तथा सच्ची दृढ़ता का गुण राजा महाराजों के कितने काम का है। पर संसार का व्यवहार ऐसा है कि सब जगह पूरी पूरी दृढ़ता से काम लेना अर्थात् तिल भर भी न डिगनेवाली दृढ़ता दिखाना न संभव ही है न अच्छा ही है। राजा महाराजों को तो और भी एक गुण को दूसरे गुणों के अधीन रखना पड़ता है। दृढ़ता ही को लीजिए. उसमें भी आगे पीछे का सोच विचार रखना पड़ता है।

मान लीजिए कि 'क' और 'ख' को एक दूसरे से बराबर काम पड़ता है। यदि किसी मामले में 'क' ने इतनी दृढ़ता ठान ली है कि हम 'ख' की एक न मानेंगे और 'ख' ने भी इतनी दृढ़ता ठान ली है कि हम 'क' की एक न मानेंगे तो उन दोनों की कैसे निभ सकती है? मन-मोटाव होगा, अड़चनें पड़ेंगी, झगड़े की नौबत आवेगी अथवा 'क' और 'ख' को एक दूसरे से अलग होना पड़ेगा या और कोई भारी उपद्रव खड़ा होगा।

इससे सिद्ध हुआ कि जब जैसा आ पड़ता है उसके अनु-सार कभी कभी समझ बूझकर आदमी को कुछ ढीला भी पड़ना पड़ता है। जब एक ओर एक आदमी की दृढ़ता है और दूसरी ओर दूसरे आदमी की दृढ़ता है तब सुलह के साथ मिल जुलकर काम करने के लिए हर एक को दूसरे की कुछ बातें माननी पड़ती हैं और निपटेरे की कोई ठीक राह निका-

लनी पड़ती है। बुद्धिमान् राजा की बुद्धिमानी मानने मनाने की प्रवृत्ति में देखी जाती है। बहुत से राजा इस मानने मनाने की प्रवृत्ति से बहुत कुछ लाभ उठाते देखे गए हैं। इसी प्रकार बहुतेरे राजा इस प्रवृत्ति के न होने से हानि उठाते देखे गए हैं।

मानने मनाने में किसी प्रकार की हेठी वा अप्रतिष्ठा नहीं है। परस्पर के व्यवहार में समझदार लोग बराबर मानते मनाते हैं। सार्वजनिक कार्यों में भी बड़े बड़े लोग मान मना-कर सुलह वा निपटेरे की राह निकालते हैं। राजनीति सदा तो मानने मनाने ही में है। कोई राजनीतिज्ञ यह आशा नहीं कर सकता कि सदा सब बातों में उसी की चलेगी। राजा महाराजों को इन सब बातों को अच्छी तरह समझ रखना चाहिए जिसमें ऐसा न हो कि झूठी आन में आकर वे सुलह वा निपटेर की बात एक न मानें और अपने ऊपर बाधा वा आपत्ति लावें। राजाओं को लेना और छोड़ना दोनों पड़ता है।

किसी मामले में सुलह वा निपटेरे के लिए कहाँ बात रखनी चाहिए यह जब जैसा हो वैसा विचार लेना चाहिए। प्राय: यह देख लेना चाहिए कि अपना मन कहाँ तक बैठता है, कैसे कैसे सिद्धांतों का हेर फेर है और जिन कारणों से दूसरे की बात मान रहे हैं वे कैसे हैं। किसी मामले में जहाँ तक दूसरे की बात मान लेने की आवश्यकता है उससे अधिक मानना दुर्बलता है। इसी प्रकार जहाँ तक मानना आवश्यक है वहाँ तक भी न मानना और अपने को अड़चन और संकट

में डालना ना-समझी है। अपना लक्ष्य ठीक रखना चाहिए। दूसरे की बात मान लेने में हानि कितनी है और लाभ कितना है यह अच्छी तरह तौल लेना चाहिए। अगर लाभ का पल्ला भारी है तो बात मान लेनी चाहिए।

यहाँ पर थोड़े में यह बतला देना भी आवश्यक है कि जहाँ दो राज्यों के बीच मानने मनाने का मामला होता है वहाँ जो राज्य निर्बल होता है उसे दूसरे की बातें अधिक माननी पड़ती हैं। पर जहाँ सबल पक्ष अपने बल ही को सब कुछ न समझकर युक्ति, न्याय और उदारता से भी काम लेता है वहाँ यह असमानता बहुत कुछ कम हो जाती है।

बिना आपस में माने मनाये लोग अपने परिवारों को दुखी करते हैं, राजनीतिज्ञ जनसमूह को दुखी करते हैं और राजा और शासक संसार को दुखी करते हैं।

ऊपर लिखी बातों को अच्छी तरह ध्यान में रखकर जितनी दृढ़ता आवश्यक हो उतनी दृढ़ता को काम में लाना चाहिए।

राज्य के बाहर रहना—स्वास्थ्य सुधारने के लिए वा यों ही जी बहलाने के लिए कभी कभी यात्रा कर लेने के सिवा किसी राजा महराजा का व्यर्थ अपना राज्य छोड़कर बाहर समय बिताना ठीक नहीं है। कुछ लोग महाराज से कहेंगे इस गरमी में महाराज शिमले वा नैनीताल चलकर रहें तो अच्छा है। इसी प्रकार कुछ लोग आकर कहेंगे "महाराज अबकी का जाड़ा कलकत्ते में कटे"। जाड़े के दिनों की चहल पहल

देखने के लिए महाराज भी शायद निकल पड़ें। पर देशी रियासतों की प्रजा को अपने महाराज का इस प्रकार बाहर रहना अच्छा नहीं लगता। वहाँ के लोग चाहते हैं कि महाराज उन्हीं के बीच में रहें और मालगुज़ारी के अपने अंश को जहाँ तक हो राज्य के भीतर ही ख़र्च करें। वे चाहते हैं कि महाराज बराबर उन्हीं में रहकर उनकी भलाई में लगे रहें। उनके लिए यह बुरा लगना स्वाभाविक है कि उनके राजा अपने आनंद के लिए देश और प्रजा को छोड़कर बाहर जायँ।

एक और बात यह है कि यूरोपियन लोगों के आने जाने की जगहों में किसी देशी रजवाड़े का अपने भारी दल बल के साथ जाना प्रायः उतना पसंद भी नहीं किया जाता। स्थान के स्वास्थ्य और लोगों के आराम में बाधा पहुँचने की आशंका होती है। इससे कई प्रकार के बंधन रक्खे जाते हैं जो देशी रजवाड़ों को नहीं भा सकते। हथियार और गोली बारूद ले जाने में नियमों की पाबंदी करनी पड़ती है। महाराज और उनके आदमियों आदि के टैक्स देने के संबंध में तरह तरह की बातें उठती हैं। महाराज और उनके आदमियों के साथ अँगरेजी पुलिस और अदालत के व्यवहार के विषय में टेढ़े टेढ़े प्रश्न उठ खड़े होते हैं। वाजिब दाम और मज़दूरी आदि चुकाने पर भी प्रायः मुक़दमे दायर कर दिये जाते हैं।

इन सब बातों को विचारकर और देखकर कि राजा महाराजों के बाहर रहने में व्यर्थ बहुत सा ख़र्च बढ़ता है

जिससे उनकी प्रजा को कोई लाभ नहीं, यही कहना पड़ता है कि उन्हें अपना राज्य छोड़कर व्यर्थ बहुत बाहर नहीं रहना चाहिए।

नाम पाने का उद्योग—राजा महाराजों को प्रसिद्ध होने के लिए बहुत उतावली नहीं करनी चाहिए। अच्छे और उदार राजा प्रसिद्ध होने की अभिलाषा करना राजा महाराजों के लिए उचित और योग्य ही है। इस संसार में उत्तम प्रकृति के लोगों के लिए लोकोपकारी माने जाने से बढ़कर और कोई संतोष की बात ही नहीं है। पर ऐसी ख्याति लाभ करने के लिए कुछ समय चाहिए। वह बरसों के शुद्ध आचरण, गहरे स्वार्थ-त्याग, शांति और धैर्यपूर्वक विषयों के अध्ययन तथा लोक-हित के लिए लगातार कठिन प्रयत्न करने से मिलती है। ऐसी कीर्त्ति प्राप्त करने का कोई और सीधा मार्ग नहीं।

जो राजा महाराजा इन बातों को पूरी तरह समझते हैं वे बहुत सी स्थिर बातों में केवल नाम के लिए व्यर्थ छेड़छाड़ करने की धुन में नहीं पड़ते। वे धैर्य और शांति के सुगम मार्ग पर चलते हैं।

जो राजा बात बात में वाहवाही के भूखे रहते हैं वे दुःख उठाते हैं। संसार को अपने कामों से इतनी छुट्टी कहाँ कि हर घड़ी राजों की 'वाह वाह' किया करे और यह ठीक भी नहीं है कि दुनिया की वाहवाही इतनी सस्ती हो जाय कि सड़ी सड़ी बातों के लिए भी लुटा करे।

जो राजा अवसर नहीं जोहते और नाम पाने के लिए अधीर रहते हैं वे कभी कभी समाचारपत्रों में तारीफ़ छपवाते हैं। भाड़े के ख़ुशामदी टट्टू ऐसे राजों के छोटे मोटे कामों के भी ख़ूब लंबे चौड़े वृत्तांत लिखते हैं और बात बात में उनकी बे सिर पैर की बुद्धिमानी और उदारता की प्रशंसा लोगों से कराना चाहते हैं। पर ज़बरदस्ती नाम पैदा करने के ऐसे ऐसे यत्नों का अंत में कुछ भी फल नहीं होता। परखनेवालों को भाड़े के टट्टुओं की झूठी और बढ़ाई हुई बातों को ताड़ने में देर नहीं लगती।

इसलिए नए राजों के लिए सबसे अच्छा सलाह यह है :-- बराबर दृढ़ता के साथ, बिना आडंबर वा दिखावट के भलाई करते रहिए। इस प्रकार यश के अधिकारी हो जाइए और देखिए वह कब मिलता है; अंत में वह मिले ही गा।

डेपुटेशन—राजा महाराजों को स्वयं डेपुटेशनों से मिलने में बहुत सावधान रहना चाहिए। यदि यह मालूम हो जायगा कि अमुक राजा व महाराजा डेपुटेशनों से बहुत मिलते हैं तो उनसे इतने अधिक डेपुटेशन मिलना चाहेंगे जिनका अंत नहीं—उनकी प्रजा के भिन्न भिन्न वर्गों के डेपुटेशन, आसपास के नगरों के डेपुटेशन, दूर दूर तक की मंडलियों के डेपुटेशन, चारों ओर से डेपुटेशन ही डेपुटेशन आवेंगे। वे बड़े बड़े एड्रेस (अभिनंदनपत्र) देंगे और लंबी चौड़ी स्पीचें झाड़ेंगे। कभी वे टेढ़े टेढ़े विवाद उठावेंगे और किसी विषय पर महाराज

से ठीक ठीक उत्तर चाहेंगे। वे धर्म, राजनीति, कलाकौशल तथा और विषयों से संबंध रखनेवाली न जाने कितनी बातों से महाराज को हैरान करेंगे। जो कुछ महाराज उनसे कहेंगे वा नहीं भी कहेंगे उसकी चारों ओर कड़ी कड़ी आलोचनाएँ होंगी।

चलता हुआ नियम तो यह होना चाहिए कि साधारण डेपुटेशन जो हों वे महाराज के मंत्रियों के पास भेज दिये जायँ। जैसे मान लीजिए कि कोई डेपुटेशन माल (लगान मालगुज़ारी) के संबंध में कुछ बातें कहना चाहता है, उसे सीधे मालविभाग के अधिकारी वा मंत्री के पास जाना चाहिए। यदि किसी डेपुटेशन को शिक्षा-विभाग से संबंध रखनेवाली बात कहनी है तो उसे शिक्षा-विभाग के अधिकारी के पास जाना चाहिए। इसी तरह और भी समझना चाहिए। विभाग का अधिकारी डेपुटेशन से अच्छी तरह मिले, उसकी सब बातें सुने और जो कुछ करना हो उसे करे। कोई बड़ा मामला हो तो डेपुटेशन दीवान या प्रधान मंत्री के पास जाय। जहाँ डेपुटेशन की बातें काम-काज की हों वहाँ के लिए यही सबसे अच्छी और सुगम रीति है।

महाराज स्वयं डेपुटेशन से मिलना केवल तब स्वीकार करें जब डेपुटेशन, उसका विषय वा अवसर बड़े महत्व का हो। ऐसा संयोग कम पड़ता है। दीवान से पूछने पर मालूम हो सकता है कि कौन बात कैसी है।

जब कभी ऐसा संयोग पड़े तो भी दीवान को पहले से डेपुटेशन के विषय और उद्देश की सूचना होनी चाहिए। डेपुटेशन की ओर से जो ऐड्रेस वा अभिनंदनपत्र दिया जाने-वाला हो उसे दीवान को देख लेना चाहिए जिसमें वह महा-राज को उसके लिए तैयार कर सकें।

महाराज की ओर से डेपुटेशनों के जो उत्तर हों वे बड़ी सावधानी के साथ खूब सोच समझकर लिखे जायँ। यदि उत्तर स्पष्ट और ठीक ठीक दिया जा सकता हो तो अच्छी ही बात है। पर प्रायः ऐसा होता है कि महाराज की ओर से तुरंत ठीक ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता। बात को पीछे से अच्छी तरह से विचारना रहता है। जहाँ यह हो वहाँ महाराज झटपट बिना सोचे समझे ऐसा उत्तर न दें जिससे उनकी कोई राय वा कार्रवाई प्रकट हो। उत्तर ऐसा हो जिससे कोई आशा न बँधे और जिसमें कोई ऐसे वादे न हों जिनका पूरा करना आगे चलकर कठिन हो। सारांश यह कि ऐसे उत्तर के लिए बड़ी बुद्धि और चतुराई चाहिए। यह नहीं कि हर एक आदमी जो शुद्ध शुद्ध भाषा लिख सकता है ऐसे उत्तर तैयार कर ले। अच्छा तो यह होगा कि महाराज ऐसे उत्तर अपने मंत्रियों से तैयार करावें। यूरप के सम्राट् भी इसी रीति पर चलते हैं।

राजा महाराजों को किससे सलाह लेनी चाहिए—राजकाज के मामलों में राजा महाराजों को

सलाह लेने की कितनी आवश्यकता है यह मैं पहले दिखला चुका हूँ। सलाह लेने का मतलब यह है कि ठीक निश्चय पर पहुँचे जिससे राज्य का प्रबंध उत्तम हो।

अब प्रश्न यह उठता है कि राजा महाराजा सलाह लें तो किससे लें। यह तो ठीक नहीं कि जिस किसी से हुआ उसी से सलाह ले ली। बीसों आदमी राजा महाराजों को बात बात में सलाह देने को तैयार रहते हैं। जो सबसे मूर्ख होते हैं वे तो इस बात में सबसे आगे रहते हैं क्योंकि न उन्हें संदेह सताते हैं, न अड़चनें सुझाई पड़ती हैं।

राजा महाराजों को मंत्रदाता वा सलाहकार बहुत समझ बूझकर चुनना चाहिए। राजा महाराजों का यह एक बहुत बड़ा और आवश्यक कर्त्तव्य है। यह उन मुख्य बातों में से है जिनके कारण उन्हें राजकाज में सफलता होती है।

राजा महाराजों को समझ बूझकर ऐसे मंत्रदाता वा सलाहकार चुनने चाहिएँ जिनमें ये गुण मुख्य हों—

(क) जिस कार्य्य में सलाह लेनी हो उसके तत्त्व और सिद्धांतों की जानकारी।

(ख) व्यवहार का अनुभव जिससे यह जाना जाता है कि उस जानकारी को कहाँ कहाँ किस प्रकार काम में लाना चाहिए।

(ग) सत्यप्रियता, न्यायप्रियता और स्वार्थत्याग की प्रवृत्ति जिनसे आशय उच्च होता है, नीयत अच्छी होती है।

राजा महाराजों को इन गुणों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और जिनमें ये गुण हों उन्हें सलाहकार चुनना चाहिए। जो राजा महाराजा ऐसा करेंगे वे संसार को यह दिखला देंगे कि उनमें योग्यता और विवेक है। इसमें संदेह नहीं कि राजा महाराजा की कीर्त्ति और सफलता बहुत कुछ अच्छे सलाहकारों के चुनाव पर निर्भर है।

तात्पर्य्य यह निकला कि राजा महाराजा को ऐसे लोगों की सलाह न लेनी चाहिए जिनमें ऊपर लिखे हुए गुण न हों। ऐसे लोगों की सलाह किसी काम की नहीं। उनसे तो उलटे हानि पहुँच सकती है। सो ऐसे लोग यदि राजा महाराजा को सलाह देने आवें, जैसा कि वे प्रायः करते हैं, तो श्रीमानों के लिए अच्छा यही होगा कि उनकी ओर विशेष ध्यान न दें। ऐसी सलाहों को सुनना तक समय नष्ट करना और सिर दुखाना है। यदि कोई राजा महाराजा ऐसे लोगों की सलाह सुनेंगे तो वे शिक्षित समाज की दृष्टि से गिर जायँगे। इसके सिवाय उनके शुभचिंतकों को भी अपने महाराज की बुद्धि का कुछ विश्वास न रहेगा। ऐसे शुभचिंतक कहेंगे वा मन में समझेंगे कि -- "महाराज को योग्य और अयोग्य सलाह की पहचान तो है नहीं, उनकी बुद्धि का तो कुछ ठिकाना नहीं। संयोग की बात है जिस किसी की सलाह चल जाय।"

मैंने इस विषय को थोड़ा विस्तार के साथ कहा है क्योंकि ऐसा प्रायः हुआ है—और देशी रियासतों में तो बहुत हुआ

है कि अच्छी से अच्छी और पक्की से पक्की सलाह किसी कुचक्री कारकुन, मुँहलगे नौकर, संकीर्ण-चित्त पुजारी, या चतुर गवैए की सलाह के आगे नहीं चल सकी है। इस प्रकार बहुत सी रियासतों का प्रबंध गड़बड़ाया है और बहुत सी रियासतें चौपट हो गई हैं।

ऊपर लिखी बातों को अच्छी तरह समझ लेने और ध्यान में रख लेने से राजा महाराजा उन बहुत से अयोग्य सलाहकारों से अपना पिंड छुड़ा सकेंगे जो राज-दरबारों में सदा अपनी राय भिड़ाने का अवसर ताका करते हैं। किसी राजा के लिए अयोग्य सलाहकारों से छुटकारा पाना बड़ा शुभ लक्षण है।

अतः इसके पहले कि राजा महाराजा किसी व्यक्ति की सलाह लें वा मानें उन्हें अपने मन में यह प्रश्न कर लेना चाहिए--क्या उस मनुष्य को उस विषय (जिसमें राय लेनी है) के सिद्धांत और व्यवहार का ज्ञान है और क्या वह सत्यप्रिय, न्यायप्रिय और निःस्वार्थ है ? यदि मन में बैठे कि 'हाँ' तब तो वह मनुष्य योग्य सलाहकार है। यदि मन में ऐसा न बैठे तो वह मनुष्य योग्य सलाहकार नहीं है।

अब मान लीजिए किसी राजा महाराजा ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि कैसे योग्य सलाहकार चुनना चाहिए। यदि ये योग्य सलाहकार सबके सब एकमत हों और एक ही सलाह महाराज को दें तो बहुत ही अच्छा है। पर प्रश्न यह उठता है कि यदि ये योग्य सलाहकार सहमत न हों और

एक दूसरे के विरुद्ध राय दें तो महाराज क्या करें। ऐसा प्राय: हो सकता है, इससे यह जान लेना अच्छा है कि ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए।

यदि योग्य सलाहकार एक दूसरे से भिन्न और विरुद्ध राय दें तो इसका निर्णय करना महाराज ही के ऊपर है कि किसकी सलाह पर चलना सबसे अच्छा है। यह महाराज का बहुत बड़ा काम है। इसे उन्हें बड़े विचार और साव-धानी से करना चाहिए।

मैं आगे कुछ बातें बतलाता हूँ जो राजा महाराजा के बड़े काम की होंगी।

सलाह चुनने में कई बातों का विचार रखना चाहिए जिनमें से मुख्य ये हैं।

किसी ज़िम्मेदार अफ़सर की सलाह के सामने किसी इधर उधर के आदमी की सलाह को न मानना चाहिए। इधर उधर का आदमी चाहे कैसा ही योग्य और विचारवान हो, ठीक ठीक निर्णय करने के लिए उतना उपयुक्त नहीं हो सकता। जवाबदेही का ध्यान—अर्थात् यह ध्यान कि महा-राज को कच्ची राय देने से विश्वास उठ जायगा एक ऐसा बंधक वा मुचलका है जो ज़िम्मेदार अफ़सर से भरसक अच्छी ही राय दिलावेगा। पर जिसके सिर कोई जवाबदेही नहीं उसके विषय में इस प्रकार की कोई पुष्टि नहीं रहती, और रहती भी है तो बहुत कम।

इस बंधक से पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए राजा महाराजा को चाहिए कि भारी मामलों में जो सलाह उन्हें दी जाय उसे वे सलाह देनेवाले से दस्तख़त और मिति वार के सहित स्मरण-पत्र के रूप में लिखा लें। यह अनुभव की बात है कि बहुतेरे लोगों से जो ज़बानी बातचीत में यों ही बिना सोचे विचारे कुछ न कुछ कह देते हैं जब लिखकर सम्मति देने के लिए कहा जाता है तब वे अपनी जवाबदेही का अधिक ध्यान रखते हैं। जो कुछ वे लिखते हैं वह उससे अधिक सोचा समझा, अधिक स्पष्ट और अधिक ठीक होता है जिसे वे केवल मुँह से कहते हैं।

जिस बात में सलाह लेनी है यदि वह सिद्धांत की बात है तो उसकी सलाह को सबके ऊपर माने जो वैसे सिद्धांतों में निपुण हो। इसी प्रकार जिस बात में सलाह लेनी है यदि वह व्यवहार-ज्ञान की बात है तो उस आदमी की सलाह सबके ऊपर माने जो वैसे व्यवहारों में पक्का हो।

और सब बातों का विचार करके जिस सलाह को बहुत से योग्य पुरुष दें उसे उस सलाह से अधिक मानना चाहिए जिसे कम लोग दें।

सब बातों का विचार करके उस सलाह पर चलना चाहिए जिससे चलते हुए कामों में सबसे कम बाधाएँ पड़ें।

और सब बातों का विचार करके उस सलाह को मानना चाहिए जो प्रजा की इच्छा और भावना के सबसे कम विरुद्ध हो।

इसी प्रकार उस सलाह को मानना चाहिए जो पड़ोस

के राज्य में विशेष कर अँगरेज़ी राज्य मे प्रचलित रीति के सबसे अधिक मेल में हो।

इसी प्रकार उस सलाह पर चलना चाहिए जिसे आप समझें कि राज्य की भलाई के लिए अँगरेज़ी सरकार भी अधिक पसंद करेगी।

कहां किस प्रकार और किस सलाह पर चलना चाहिए इसका निर्णय करने के लिए ऊपर लिखी बातें बड़े काम की हैं।

सबसे उलझन वहाँ पड़ेगी जहाँ ऊपर लिखी सब बातों का विचार करने से कोई एक राह न सूझेगी अर्थात् कुछ बातों का विचार करने से मन में बैठेगा कि ऐसा करना चाहिए और कुछ बातों का विचार करने से यह ठहरेगा कि ऐसा नहीं, ऐसा करना चाहिए। ऐसी दशा में पक्ष और विपक्ष की बातों को अच्छी तरह तोलना चाहिए और पल्ला देखकर निश्चय करना चाहिए।

पक्ष और विपक्ष की बातों को किस तरह तौलना चाहिए और पल्ला किस तरह आंकना चाहिए ठीक ठाक बतलाना कठिन है। यह अभ्यास और परख की बात है।

राजा महाराजों को ठीक ठीक निर्णय करने में बहुत कुछ सुबीता हो सकता है, यदि वे भिन्न भिन्न मत देनेवाले अपने सलाहकारों को अपने सामने आपस में वाद-विवाद करने दें और स्वयं भी उस विवाद में सम्मिलित हों तथा ऊपर जिन बातों का विचार रखने के लिए कहा गया है उसके

संबंध में पूछपाछ करें। इस विवाद का फल यह होगा कि जिन बातों में परस्पर भेद पड़ता होगा वे तै हो जायँगी और सब लोग एक परिणाम पर पहुँच जायँगे।

यदि सब लोग एक परिणाम पर न पहुँचें और महाराज देखें कि ऊपर कही सब बातों को तौलकर ठीक ठीक पल्ला नहीं आँक सकते तो सबसे अच्छा होगा कि यदि संभव हो तो महाराज उस विषय को फिर किसी समय सोचने और विचारने के लिए टाल रक्खें। आगे चलकर कोई ठीक राह निकल ही आवेगी।

यदि उस विषय का टालना संभव न हो और उसी समय निर्णय की आवश्यकता हो तो राजा महाराजों के लिए सबसे अच्छा यह होगा कि वे अपने प्रधान मंत्री की सलाह को सबके ऊपर मानें और उसी पर चलें।

काम का बोझ—राजा महाराजों को अपने ऊपर बहुत अधिक कामों का बोझ नहीं लेना चाहिए। उन्हें इतना काम न उठाना चाहिए कि उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचे। उन्हें आराम के लिए पूरा समय न मिले और काम भी उतनी समझ बूझ और सोच विचार के साथ न हो।

राजा महाराजों को यह याद रखना चाहिए कि उन्हें जीवन भर काम ही करना है, कुछ दिन खूब परिश्रम करके फिर चुपचाप बैठ नहीं रहना है। इससे काम भी एक हिसाब से करना चाहिए।

मोटे तौर पर राजा महाराजों को प्रतिदिन चार पाँच घंटों से अधिक काम नहीं करना चाहिए। इससे उन्हें स्वास्थ्य सुधारने, आराम करने, पढ़ने लिखने, परिवार की देख भाल करने, इष्ट मित्रों से मिलने तथा सुख और आनंद के लिए समय रहेगा। जब कोई और ऊपर का काम आ जाय तब महाराज कुछ अधिक समय अवश्य लगावें।

बहुत से छोटे ब्योरों को तो राजा महाराजों को अपने प्रधान मंत्री के ऊपर छोड़ देना चाहिए। उनके संबंध में एक एक मामले में अलग अलग ब्योरेवार आज्ञा देने से अच्छा यह होगा कि महाराज एक सामान्य आज्ञा दे दें जो एक ही प्रकार के बहुत से मामलों पर घटे। इस युक्ति से बहुत सा समय और श्रम बचेगा। सिद्धांत यह है कि महाराज बहुत से ऐसे कामों का बोझ अपने ऊपर न उठा लें जिन्हें और लोग भी अच्छी तरह कर सकते हैं। महाराज एक इंजीनियर के समान हैं। इंजीनियर को आप इंजिन के कल पुरजों को नहीं चलाना पड़ता। इंजीनियर जितना ही अधिक दक्ष होगा उतना ही वह इंजिन से अधिक काम लेने का प्रबंध करेगा और अपने लिए बहुत सा समय देख भाल और सुधार करने के लिए निकालेगा।

कामकाज—राजा महाराजों को अपना स्वास्थ्य और बुद्धि ठिकाने रखने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे व्यर्थ के झंझटों से अपने को बचाये रहें। यदि वे इस बात का ध्यान नहीं रक्खेंगे तो बहुत माथापच्ची करनी पड़ेगी।

न जाने कितने लोग तरह तरह की प्रार्थनाएँ लेकर महाराज के पास पहुँचेंगे और कुछ न कुछ चाहेंगे। उनमें से मुख्य ये होंगी—

(क) नौकरी, तरक़्क़ी. वेतनवृद्धि और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदली के लिए प्रार्थनाएँ।

(ख) मुआफ़ी ज़मीन के लिए प्रार्थनाएँ।

(ग) ब्याह शादी के लिए पोशाक, गहने और रुपये पैसे की याचना।

(घ) सीधे के लिए प्रार्थना।

(च) गाड़ी, घोड़ा, सवार आदि मँगनी पाने की प्रार्थना।

(छ) उधार और पेशगी आदि के लिए प्रार्थना।

(ज) जो बातें तै हो चुकी हैं उन्हें रद्द करने, बदलने वा फिर से विचारने की प्रार्थना।

(झ) धर्म्मार्थ दान और चंदे के लिए प्रार्थना, इत्यादि इत्यादि।

इस प्रकार के बहुत से झंझटों से राजा महाराजा दो चार सिद्धांतों का ध्यान रखने से बच सकते हैं। वे यहाँ संक्षेप में कहे जाते हैं।

उन मामलों में, जिनके विषय में सब कार्रवाई करने का अधिकार महाराज ने भिन्न भिन्न विभागों के अधिकारियों को दे रक्खा है, महाराज को हाथ न डालना चाहिए। यही उचित और योग्य है।

बहुत से मामलों में महाराज प्रार्थी से कह सकते हैं कि जिस विभाग से संबंध है उसके अधिकारी द्वारा प्रार्थना करो।

बहुत से मामलों में महाराज कहें कि हम व्यय की वर्तमान सीमा को बढ़ा नहीं सकते, क्योंकि यह बहुत आवश्यक है कि आय से व्यय कम रहे।

बहुत से मामलों में पुराने दाखलों के हवाले पर चलना चाहिए।

कुछ मामलों में इस सिद्धांत को बर्तें कि जिस बात पर एक बार विचार और निश्चय हो चुका उस पर फिर, जब तक कोई नया और बहुत ही आवश्यक कारण न दिखाया जाय, विचार नहीं हो सकता।

निर्णय वा विवेक—जो लोग ऊँचे पद पर हैं और बड़े बड़े अधिकार रखते हैं, विशेष कर जो राजा हैं, उन्हें सदा निर्णय का अभ्यास रखना चाहिए। यह एक पक्ष के कारणों को एक ओर और दूसरे पक्ष के कारणों को दूसरी ओर रखकर तौलने और पल्ला आँकने का अभ्यास है। यह अभ्यास बहुत ही आवश्यक और उपयोगी है और यत्न करने से प्राप्त होता है।

जब बहुत सी बातों में से किसी एक बात को चुनना हो तो चुनाव मनमाना नहीं होना चाहिए। चुनाव किसी अच्छे कारण से होना चाहिए। बड़े और छोटे सब मामलों में यही सिद्धांत रखना चाहिए। सारांश यह कि चाहे कोई बात हो, बुद्धि को ऊपर रखना चाहिए।

जो राजा बुद्धि के अनुसार चलता है उसका मार्ग सदा निष्कंटक रहता है।

यदि कोई किसी राजा से कहे कि ऐसा कीजिए तो उससे उसका कारण पूछना चाहिए।

सब बातें बुद्धि के अनुसार करने से राजा की पुष्टि रहेगी, क्योंकि सब बुद्धिमान् उनका पक्ष लेंगे। प्रजा और सर्वसाधारण की भी सहानुभूति और सहायता रहेगी।

सच तो यह है कि यह निर्णय वा विवेक ही की शक्ति है जिसके कारण एक आदमी कुछ और होता है दूसरा कुछ और। यदि दो आदमी सामान्य दशा में रक्खे जायँ तो वह आदमी अधिक सफलता प्राप्त करेगा जिसमें विवेक अधिक होगा।

पर निर्णय शक्ति वा विवेक किसी को जन्म से नहीं होता। इसको धैर्य्य के साथ अभ्यास द्वारा प्राप्त करना पड़ता है। उसको ठीक ठीक काम में लाने के लिए पक्के सिद्धांतों की भरपूर जानकारी चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि बड़े बड़े प्रसिद्ध पुरुष कठिन और उलझन के मामलों में किस प्रकार निर्णय करते हैं। इस बात की जानकारी के लिए नित्य कुछ पुस्तकें पढ़ी जायँ तो अच्छा है।

पूरा पूरा विचार—यदि राजा महाराजों के पास आज्ञा के लिए कोई बात आवे तो उन्हें यह देख लेना चाहिए कि उसका प्रभाव—

(क) उन पर,

(ख) उनकी प्रजा पर,

(ग) और राज्यों की प्रजा पर,

(घ) अँगरेज़ी सरकार पर,

(च) सर्वसाधारण पर तथा

(छ) आगे आनेवाली उसी प्रकार की और बातों पर कैसा पड़ेगा।

भारी भारी मामलों में इन्हीं सब बातों को अच्छी तरह देखना चाहिए।

किसी कार्रवाई की भलाई बुराई समझने के लिए यह भी देख लेना चाहिए कि यदि और लोग भी वैसी ही कार्रवाई करें तो वह हमें कैसी लगेगी। इसमें यह सिद्धांत रक्खा गया है कि तुम दूसरे लोगों के साथ वैसा ही करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें।

मेरे कहने का तात्पर्य्य यह है कि किसी कार्रवाई का प्रभाव किन किन बातों पर कैसा पड़ेगा यह अच्छी तरह देख लेना चाहिए। इसके देखने में वर्तमान का भी ध्यान रखना चाहिए और भविष्य का भी।

प्रस्तावों के परिवर्तन की प्रवृत्ति—बहुत से राजा महाराजों को जो प्रस्ताव उनके सामने लाया जाता है उसमें कुछ न कुछ फेरफार करने का बड़ा चाव रहता है—चाहे फेर-फार की कोई आवश्यकता हो, चाहे न हो। इस प्रवृत्ति से

अपने को बचाना चाहिए। इस प्रवृत्ति से काम में रुकावट पड़ सकती है।

इस प्रवृत्ति का मूल है अहंकार। इस प्रवृत्तिवाला मनुष्य समझता है कि यदि हम अपने सामने आए हुए प्रस्ताव में कुछ अदल बदल करेंगे तो हमारा बड़प्पन रहेगा। पर यह भूल है। अदल बदल करने ही में बुद्धिमानी नहीं है। अदल बदल का जब कोई ठीक कारण होगा तभी बड़प्पन और बुद्धिमानी समझी जायगी। जहा बिना किसी ठीक कारण के केवल छोटाई बड़ाई के ख़याल से अदल बदल किया जाता है वहा केवल चित्त की दुर्बलता सूचित होती है। लोग इस दुर्बलता को चट भाँप जाते हैं। वे असल और नक़ल की पहचान कर लेते हैं।

राजा महाराजा उपस्थित प्रस्ताव की जहाँ तक जाँच करते बने, करें; उन पर विवाद भी करें। जो बात अयुक्त हो उसे कहें और पूछपाछ करें। यदि यह मन में बैठ जाय कि इन कारणों से अदल बदल करना आवश्यक है तो अदल बदल करें। पर यों ही केवल अधिकार और बड़प्पन जताने के उद्देश से अदल बदल करना बड़ी बुरी बात है।

मैंने देखा है कि चापलूस लोग, जिनसे शायद ही कोई राज-दरबार बचा हो, इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देकर उभाड़ते हैं। पर इन लोगों के फेर में पड़ना मानो अपने को भूलकर अपनी हानि आप करना है।

बात के ठीक जँचने पर और कर्म्मचारियों पर इतना विश्वास होने पर कि उनके हाथ में सब ब्योरा ठीक रहेगा जो राजा महाराजा दृढ़चित्त होकर कहते हैं कि "मैं सहमत हूँ" वे काम को बड़ा सुगम कर देते हैं। यही एक उपाय है जिससे काम में अड़चन नहीं पड़ सकती और राजा महाराजों को भी ध्यान देने योग्य भारी भारी मामलों को निपटाने का पूरा अवकाश मिल सकता है।

साध्य और साधन—किसी काम को अच्छी तरह और सफलतापूर्वक करने के लिए पहले यह साफ़ साफ़ समझ लेना ज़रूरी है कि वह उद्देश क्या है जिसे पूरा करना है और विशेष लक्ष्य क्या है और क्या नहीं है।

यह हो जाने पर दूसरा विचार साधन वा उपाय का करना चाहिए। एक उद्देश की सिद्धि के अनेक साधन वा उपाय हो सकते हैं। इनमें से कौन सबसे अच्छा है, इसका निश्चय जितनी सावधानी से हो सके कर लीजिए।

सबसे अच्छा उपाय ठहरा लेने पर उन सब कठिनाइयों और आपत्तियों को सोचिए जो उद्देश में बाधा डाल सकती हैं वा उसे निष्फल कर सकती हैं और उन कठिनाइयों और आपत्तियों को दूर करने का उपाय कीजिए वा सोचे रहिए।

तब देश, काल और अवस्था का विचार करके काम को कर चलिए।

यदि इस ढंग से कोई चलेगा तो सफलता का विस्तार बढ़ जायगा अर्थात् बहुत सी बातों में सफलता होगी।

यद्यपि ऊपर बताया हुआ ढंग बहुत सीधा है पर बहुत से लोग उस पर नहीं चलते और चलते भी हैं तो पूरी तरह नहीं। ऊपर लिखे ढंग पर कोई कम चलता है कोई अधिक, इसी से जीवन में किसी को कम सफलता होती है किसी को अधिक।

जो मनुष्य इस ढंग वा युक्ति का पूरा पूरा ध्यान रखता है वह कभी चक्कर में नहीं पड़ता। वह तो पहले से सोच समझकर ठहराई हुई शैली पर बराबर चला चलता है। पर जो मनुष्य कोई काम उठाने में इसका ध्यान नहीं रखता वह बिना ठीक ठिकाने के चलता है और पग पग पर घबड़ाता और अधीर होता है।

जो बातें मैंने कही हैं वे सब पर घटती हैं पर राजा महाराजों पर विशेष रूप से, जिन्हें बराबर कुछ न कुछ करना रहता है और जिन्हें प्रायः बड़े बड़े मामलों में कार्रवाई करनी रहती है।

कर्मचारियों के साथ व्यवहार—जब कि एक बार कर्मचारी पूरी सावधानी के साथ योग्यता देखकर चुने गए तब फिर महाराज को उन पर विश्वास रखना चाहिए। महाराज का यह संदेह करना न्याय और नीति के विरुद्ध होगा कि वे ठीक ठीक बातें नहीं बतलाया करते वा अंडबंड

कार्रवाई कराया करते हैं। जिन राजा महाराजों ने यह नहीं सीखा है कि दूसरों पर किस तरह विश्वास रखना चाहिए वे अपने जीवन में कुछ नहीं कर सकते क्योंकि कोई ख़ुशी से उनका साथ देनेवाला नहीं मिलता।

राजा महाराजों को चाहिए कि अपने उच्च कर्म्मचारियों के साथ शिष्टता और मान का व्यवहार करके उनकी मर्यादा की रक्षा और पुष्टि करें।

संसार में ऐसे मनुष्य नहीं मिल सकते जो सब गुणों में पूरे हों। योग्य से योग्य मनुष्य में भी कोई न कोई कसर रहती ही है। राजाओं को इस प्रत्यक्ष बात का ध्यान उदारता-पूर्वक रखना चाहिए। मनुष्य की सब बातों को देखे और "करे दोष को कुछ अनदेख, गुण पर रीझे सदा विसेख"।

बड़े बड़े अफ़सरों को मामलों पर बेधड़क वाद विवाद करने और अपना मतभेद प्रकट करने का पूरा अधिकार रहना चाहिए।

राजा महाराजों से जहां तक हो सके किसी बड़े अफ़सर की पीठ पीछे बुराई न करें। किसी अफ़सर के विरुद्ध जहां कोई बात महाराज के मुँह से निकली कि वह चट दूर तक फैला दी जायगी, फिर लोग उस अफ़सर को कुछ न समझेंगे और वह अपना काम अच्छी तरह से नहीं कर सकेगा।

इन्हीं सब बातों का ध्यान रखकर इधर उधर के साधारण मनुष्यों को, जो राज-दरबारों में पहुँचा करते हैं, बड़े बड़े अफ़सरों के विषय में मनमाना अंडबंड न बकने देना चाहिए।

ऐसे प्रार्थनापत्र भी न लेने चाहिएँ जिनमें बड़े अफ़सरों के प्रति व्यर्थ अपमान-सूचक शब्द लाए गए हों।

यदि महाराज को किसी बड़े अफ़सर को कुछ बुरा भला कहना हो तो अच्छा यह होगा कि एकांत में कहें, दस आदमियों के सामने नहीं।

सारांश यह कि देश भर यह देखे कि महाराज और उनके कर्मचारी मिल-जुलकर एक गहरा गुट्ट बनाए हैं और उनमें वह शक्ति पूरी पूरी है जो उद्देशों, भावों और कर्मों की एकता से होती है।

मैं यह कह चुका हूँ कि राजा महाराजा बहुत अधिक काम न करें। राजा महाराजों को यह भी देखना चाहिए कि उनके उच्च कर्मचारी काम से बहुत अधिक नहीं दबे हैं और उन्हें थोड़ा बहुत विश्राम करने, पढ़ने लिखने और स्वास्थ्य सुधारने का समय मिलता है। यदि उनका इतना ख़याल रक्खा जायगा तो वे काम और भी अच्छा करेंगे।

विश्वास—विश्वास का बना रहना सार्वजनिक कार्यों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सार्वजनिक कार्यों के लिए तो वह जितना आवश्यक है उतना निज के कामों में भी नहीं। साधारणत: यह कहा जा सकता है कि किसी उत्तम गुण का होना राज्य के लिए उससे अधिक आवश्यक है जितना कि वह व्यक्ति के लिए है, क्योंकि राज्य की ओर से जो कार्य होते हैं उनका प्रभाव बहुत दूर तक पड़ता है।

विश्वास बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि जो प्रतिज्ञा या वादा किया जाय वह पूरा करने की इच्छा से, और वह पूरा किया जाय।

खेद है कि बहुत सी देशी रियासतों में इस सिद्धांत का ध्यान नहीं रक्खा जाता। फल क्या होता है? देशी रियासतों की ओर से जो वादे किए जाते हैं उन पर कोई पूरा विश्वास नहीं करता, चाहे वे वादे कैसे ही पक्के क्यों न हों।

इस बात में अँगरेज़ सरकार और देशी रियासतों में क्या अंतर है वह एक दृष्टांत देकर दिखाया जा सकता है। मान लीजिए कि किसी देशी रियासत ने उधार लेने की घोषणा की अर्थात् उसने सर्वसाधारण से कुछ रुपया उधार लेना चाहा। अब मान लीजिए कि अँगरेज़ सरकार ने भी रुपए उधार लेने की घोषणा दी। यह निश्चय है कि जिस धड़ाके के साथ लोग अँगरेज़ सरकार को रुपया देने दौड़ेंगे उस धड़ाके के साथ देशी रियासत को नहीं। देशी रियासत चाहे सूद भी अधिक देती हो पर लोग कम सूद पर अँगरेज़ सरकार को रुपया देना पसंद करेंगे। यह भेद-भाव क्यों है? इसलिए कि लोग समझते हैं कि अँगरेज़ सरकार अपने वादे अच्छी तरह पूरा करेगी पर किसी देशी रियासत के विषय में उन्हें इतना अधिक निश्चय नहीं रहता।

सर्व साधारण के आराम, रक्षा और विश्वास तथा उन्नति और सुख के लिए यह आवश्यक है कि राजा

महाराजा किसी मनुष्य वा किसी समाज से जो वादे करें उन्हें वे पूरा करें।

पर इसके लिए यह आवश्यक है कि जो वादे किए जायँ बिना समझे बूझे नहीं। कोई वादा करने के पहले पूरी जाँच पड़ताल और पूरा सोच विचार कर लिया जाय।

इनाम—राजा महाराजों को न तो एकबारगी बिना समझे बूझे और बेहिसाब इनाम देना चाहिए और न इनाम देने में बहुत सोच विचार और कंजूसी करनी चाहिए। उन्हें न्यायी और उदार होना चाहिए। ऐसा करना लोक-धर्म है और इससे लोकहित की वृद्धि होती है।

इनाम या तो धन के रूप में होता है, वा मान और प्रतिष्ठा के रूप में होता है अथवा दोनों रूपों में होता है। इनाम का उद्देश है सुख पहुँचाना और अच्छे कामों के लिए उत्साह उत्पन्न करना। इससे इनाम देनेवाले को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह उद्देश पूरा हो अर्थात् इनाम जो दिया जाय वह सुख पहुँचाने भर को हो और वह इस तरह सोच समझ कर दिया जाय कि उससे अच्छे काम के लिए उत्साह मिले।

किसी नौकर या कर्मचारी को जो मामूली तनख़्वाह मिलती है वह मामूली काम के लिए है ही, इससे उसके लिए उसे कोई ख़ास इनाम देने की ज़रूरत नहीं। मामूली काम के लिए ऊपर से कुछ इनाम देने से उलटी बुराई हो सकती

है। इनाम इकराम की बात तो तब उठनी चाहिए जब नित्य के मामूली काम से बढ़कर कोई काम किया जाय।

अस्तु, जहाँ किसी प्रकार की सेवा न की गई हो या यों ही कोई छोटी मोटी सेवा की गई हो वहाँ पुरस्कार न देना चाहिए। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि राज-दरबारों में ऐसे बहुत से लोग मिलते हैं जो लंबा चौड़ा इनाम केवल इसलिए चाहते हैं कि उनके सिर बहुत सा क़र्ज़ है अथवा वे पुराने ख़ानदान के हैं, इत्यादि इत्यादि।

बड़ाई और प्रशंसा करना भी एक प्रकार का पुरस्कार ही देना है। ऐसे पुरस्कारों के विषय में भी ऊपर लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए। ऐसा पुरस्कार भी भरपूर क्या कुछ अधिक ही होना चाहिए।

किसी इनाम के भरपूर वा बढ़ चढ़कर होने की एक अच्छी पहचान यह है कि ऐसा इनाम पानेवाला अपने इनाम को औरों को दिखाने में लज्जित नहीं होता बल्कि प्रसन्नता और अभिमान के साथ उसे दिखाता फिरता है। इस तरह जब इनाम दिया जाता है तभी उससे उत्साह मिलता है और उसका उद्देश पूरा होता है।

जो राजा समझ बूझकर इनाम देते हैं उनसे बहुत कुछ भलाई की राह निकल सकती है।

दूसरों के जी को भी जी समझना—प्रत्येक राजा क्या प्रत्येक पुरुष को, जिसे बहुत से आदमियों से काम पड़ता

हो, दूसरों के जी का भी ध्यान रखना चाहिए। किसी मामले में चाहे वह छोटा हो या बड़ा, न तो व्यर्थ कोई कड़ी वा जी दुखानेवाली बात कहनी चाहिए और न कार्रवाई करनी चाहिए। यह बड़ी अच्छी बात है और इसे डालने में जो कष्ट हो उठाना चाहिए। परख और अभ्यास से यह बात पड़ती है।

यह जानने का कि कौन सी बात कड़ी, वा जी दुखानेवाली है, एक सीधा ढंग यह है कि मनुष्य सोचकर देखे कि यदि वही बात हमें कही जायगी वा हमारे साथ की जायगी तो हमें कैसा लगेगा। बहुत से लोग इस सिद्धांत पर अच्छी तरह नहीं चलते।

दूसरा उपाय इस बात के डालने का यह है कि जो लोग इस गुण के लिए प्रसिद्ध हों उनके विचारों, वचनों और कर्मों की ओर ध्यान दे।

संवादपत्रों की सम्मति—कोई राय समाचारपत्रों में छपी है उससे यह न समझ लेना चाहिए कि वह ठीक ही है। प्रकाशित मत का मोल तो समाचारपत्र और लेखक की प्रतिष्ठा पर है। पर कभी कभी ये दोनों बहुत उच्च श्रेणी के नहीं होते। कभी कभी बहुत ही कम जानकारी और समझ के आदमी अखबारों में लिखने बैठ जाते हैं। कभी कभी तो बहुत सी ओछी प्रवृत्ति के लोग ऐसा करते हैं। कभी कभी तटस्थ निरीक्षक वा समालोचक के रूप में ऐसे लोग सामयिक पत्रों में लिखते हैं जो समझते हैं कि हमारे साथ अन्याय वा

कुव्यवहार हुआ है अर्थात् ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जिनकी राय पैसे की है, अर्थात् जो जैसा पावेगा वह वैसा गावेगा।

ऐसी दशा में इस बात के समझने में बहुत सावधान रहना चाहिए कि समाचारपत्रों की सम्मतियाँ वा समालोचनाएँ कहाँ तक ध्यान देने योग्य हैं।

जो संवादपत्र ईमानदारी से चलाए जाते हैं और जो सर्व-साधारण की सम्मति का पता देते हैं अथवा जिनमें बड़े बड़े बुद्धिमानों के विचार निकलते हैं उनका तिरस्कार न करना चाहिए। उन्हें तो जहाँ तक हो सके ध्यान देकर पढ़ना चाहिए जिसमें राज्यप्रबंध में सहायता मिले।

स्वाध्याय—अधिकार मिलने पर राजा महाराजों का पढ़ना न छूटना चाहिए। यह बहुत आवश्यक है कि उनका पढ़ना किसी नियत ढर्रे पर चला चले। राजा महाराजों को बहुत सा समय और ध्यान तो राजकाज की बातों में ही लगाना पड़ेगा। पर स्वाध्याय के लिए भी कुछ समय निकालना ही चाहिए, और नहीं तो दिन में तीन ही घंटे सही।

इससे यह होगा कि उनका (क) अँगरेज़ी भाषा की और (ख) उपयोगी बातों की जानकारी बढ़ेगी।

अँगरेज़ी हम लोगों के लिए एक विदेशी भाषा है और यों भी कठिन है, इससे हम लोगों को उसका बराबर अभ्यास रखना पड़ता है। यदि अभ्यास न रक्खें तो उन्नति करना तो दूर रहा, सीखा सिखाया भी भूल जायँ। हम लोगों को

बहुत सी अच्छी अँगरेज़ी नित्य पढ़नी चाहिए। इन्हें नित्य थोड़ी बहुत अँगरेजी लिखनी और बोलनी चाहिए।

अँगरेज़ी भाषा जानने का मुख्य उद्देश उपयोगी बातों की जानकारी प्राप्त करना है। इससे जो कुछ हम पढ़ें वह ऐसा हो जिसके द्वारा हम अपने ज्ञान का भांडार बढ़ा सकें।

जो समाचारपत्र योग्यतापूर्वक चलाए जाते हों उन्हें पढ़ना चाहिए। राजा महाराजों को संसार के, विशेष कर भारत और इँगलैंड के, वर्त्तमान चलते हुए इतिहास को देखते चलना चाहिए। तात्पर्य यह कि बड़ी बड़ी बातें जानने को रह न जायँ।

मि० ग्लैडस्टोन ऐसे बड़े बड़े राजनीतिज्ञों के व्याख्यानों को पढ़ने से भी बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

पार्लीमेंट के वाद विवाद पढ़ने का भी अच्छा फल होगा।

देशी रियासतों के संबंध में जहाँ जितनी बातें मिलें सबको पढ़ना और नोट करना चाहिए। बड़े लाट की स्पीचें जो इस संबंध में हों वे तो किसी तरह न छूटने पावें।

हिंदुस्तान से संबंध रखनेवाले पार्लीमेंट के कागज़ों (Blue Books) को बराबर मँगाना चाहिए और उनके जो अंश काम के हों उन्हें पढ़ना चाहिए।

प्रांतिक गवर्न्मेंट के वार्षिक शासन-विवरणों से राजा महाराजों को परिचित रहना चाहिए।

इस प्रकार की पढ़ाई राजा महाराजों को राजकाज में बहुत काम देगी। इससे उन्हें राज्य सँभालने की शक्ति आवेगी।

राजों को ऐसी चीजें पढ़नी चाहिएँ जिनसे उनके हृदय में महत् विचारों और ऊँचे भावों का समागम हो और महल के तुच्छ और साधारण आदमियों की संगत का ओछा प्रभाव दूर हो। देशी रजवाड़े कभी कभी ऐसी ही संगत में पड़ जाते हैं जिससे उनके विचार छोटे वा संकुचित हो जाते हैं। वे अपने को उसी पुरानी दुनिया के भीतर बंद रखते हैं जिसमें वर्त्तमान उन्नति के युग का प्रकाश नहीं पहुँचता। इसकी सबसे अच्छी दवा यह है कि वे मनुष्य जाति में सबसे अधिक सभ्य और शिक्षित लोगों के विचारों से जानकार हो जायँ।

राजा महाराजा कभी कभी जीवनचरित और उपन्यास आदि भी पढ़ें जिनसे श्रेष्ठ गुणों को उत्तेजना मिलती है।

ऊँचा पद पाकर और बड़ा अधिकार हाथ में रखकर जीवन का लक्ष्य वा आदर्श ऊँचा रखने के लिए सतोगुण की शक्ति चाहिए और उस सतोगुण की शक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह बराबर किसी न किसी ढंग से नई और ताज़ी होती रहे।

मनुष्यों पर शासन करने के लिए केवल सिद्धांतों ही के ज्ञान से काम नहीं चलता। ऐसे ज्ञान के साथ बराबर अभ्यास और अनुभव भी चाहिए। यह नहीं कि राजा महाराजा व्यवहार-ज्ञान और अनुभव को कोई चीज़ ही न गिनें और बड़े बड़े मामलों में अनुभवी लोगों की राय लेना आवश्यक ही न समझें। मैं एक दृष्टांत देता हूँ जिससे सिद्धांत और व्यव-

हार में जो अंतर है वह मन में बैठ जायगा। आप दाहने हाथ से लिखना अच्छी तरह जानते हैं। यदि सिद्धांत ही तक बात है तो उसमें दाहिने और बाएँ का कुछ विचार नहीं है। पर जरा बाएँ हाथ से लिखकर देखिए तो कैसा ऊट-पटाँग लिखा जाता है। क्यों ? बात यह है कि सिद्धांत तो दोनों हाथों के विषय में ठीक है पर दाहिने हाथ का अभ्यास है और बाएँ का नहीं। अभ्यास के अभाव से जो अंतर पड़ जाता है वह देखिए और अकेले सिद्धांत-ज्ञान ही के आसरे पर न रहिए।

जो सिद्धांत मैंने ठहराए हैं और जो व्यवस्थाएँ मैंने बतलाई हैं वे ध्यान में रखने योग्य हैं। सभ्य और सुशिक्षित राजा महाराजा उन्हीं के अनुसार चलते हैं। उन्हीं के द्वारा वे सुख, मान और यश के शिखर पर पहुँचते हैं। उन्हीं के द्वारा देशी रजवाड़े अपनी वर्त्तमान स्वतंत्रता बराबर स्थिर रख सकते हैं। मैं अपनी बातों के पक्ष में यहाँ पर उन वाक्यों को उद्धृत करता हूँ जो १८७६ में अँगरेज़ी सरकार की ओर से कहे गए थे।

"जिस नीति का व्यवहार अँगरेज़ी राज्य में होता है उसको समझ बूझकर धीरे धीरे देशी रियासतों में फैलाने से ही देशी रजवाड़े अपने प्रबंध की स्वतंत्रता को सबसे अधिक दृढ़ समझ सकते हैं और साम्राज्य की ओर से किसी प्रकार के हस्तक्षेप को सबसे अच्छी तरह बचा सकते हैं।"

राजनीति और शासन के सिद्धांत—अँगरेज़ी सरकार की बड़ी अभिलाषा रहती है कि देशी रजवाड़े इस उत्तमता के साथ अपने राज्यों का प्रबंध करें कि वे आदर्श हों और देशी लोगों को उनका अभिमान हो। यही अभिलाषा राजा महाराजों की भी रहती है। पर कोरी अभिलाषा से तो कुछ होता नहीं। उस अभिलाषा को पूरा करने के लिए काम करना चाहिए, जो बुद्धिमान् और उत्साहियों के लिए कुछ कठिन नहीं है।

मैं यहां कुछ सिद्धांत बतलाता हूँ जिन पर चलने से राजा महाराजा अपने को आदर्श बना सकते हैं। इन सिद्धांतों को संसार के सब सभ्य राज्य मानते हैं। इन सिद्धांतों को जान लेना ही बस नहीं है। इनको समझे और मन में जमावे। इनको सदा ध्यान में रक्खे और राज्य का हर एक काम इन्हीं के अनुसार करे। इन सिद्धांतों को केवल जान लेना और नित्य के व्यवहार में उनको काम में न लाना वैसा ही अपराध है जैसे अच्छा कंपास रखकर भी उसकी ओर जहाज़ चलाते समय न देखना।

पुराने ढर्रे के कुछ लोग कहेंगे कि वर्त्तमान महाराज इन सिद्धांतों को क्यों जानें और उन पर क्यों चलें? पुराने महाराज लोग तो ऐसा नहीं करते थे और वे अपने राज्य का प्रबंध करते ही थे। आजकल के महाराज भी वही करें।

यहाँ यह स्पष्ट कहना पड़ता है कि पुराने महाराज लोग बहुत अच्छे शासकों में से न थे। वे पुराने पूर्वीय मनमाने

ढंग पर राज्य करते थे। वे प्रजा के सुख का इतना ध्यान नहीं रखते थे और यदि थोड़ा बहुत रखते भी थे तो उस सुख को बढ़ाने के सबसे अच्छे उपायों को नहीं जानते थे। कभी कभी वे बड़ी भारी भूलें करते थे; बड़ी बड़ी अड़चनों में फँस जाते थे। यदि वे इन ठीक सिद्धांतों को जानते होते तो ऐसा न होता। पुराने राजा महाराजों को इन सिद्धांतों को जानने के उतने साधन भी नहीं थे जितने आजकल के महा-राजों के लिए हैं। एक बात और भी है। तब की और अब की दशा में बहुत कुछ अंतर है। तब यदि कहीं किसी राज्य का प्रबंध बुरा होता था तो उस पर बहुत लोगों का ध्यान नहीं जाता था। अब चारों तरफ़ रेल दौड़ती है, डाक और तार का प्रबंध है। एक राज्य में जो बुराई होगी उसकी ख़बर चट दूर दूर तक फैल जायगी।

रेल हो जाने के कारण बाहर के लोग भी देशी राज्यों में बहुत आया जाया करते हैं। इससे देशी राज्यों का कुप्रबंध ऐसे लोगों को पहले के लोगों से अधिक खलेगा और उस पर बड़ा हल्ला मचेगा।

देशी राज्यों के लोगों का भी कलकत्ता बंबई तथा अँगरेज़ी राज्य के और बड़े बड़े नगरों में आना जाना रहता है। उनको अब अपने यहाँ की राज्यप्रणाली को और जगहों की राज्यप्रणाली से मिलान करने का अधिक अवसर मिलता है।

ज्ञान और शिक्षा की वृद्धि के कारण अब लोगों के चित्त में 'उत्तम राज्य' का आदर्श बहुत ऊँचा हो गया है। जो बुरा राज्य वे पहले सहन कर सकते थे अब नहीं करेंगे। जिस प्रकार के उत्तम राज्य से उन्हें पहले संतोष हो जाता था उस प्रकार के राज्य से अब नहीं होगा।

एक बात और है। पहले सब देशी रियासतों में थोड़ा बहुत बुरा राज्य था। यहाँ तक कि अँगरेज़ी राज्य में भी व्यवस्था ठीक नहीं थी। पर अब चारों ओर उन्नति है, कहीं कम, कहीं ज़्यादा। अतः यदि कोई देशी रियासत आगे नहीं बढ़ेगी तो लोगों को यह बात खटक जायगी और असंतोष फैलेगा।

सबसे बढ़कर बात तो यह है कि अँगरेज़ी सरकार को जिसका भारतवर्ष में साम्राज्य है पहले की अपेक्षा अब बुरा शासन अधिक खटकता है। अँगरेज़ी सरकार अपने ऊपर इस बात का ज़िम्मा समझती है कि देशी रियासतों में बुरा राज्य न रहने पावे। अँगरेज़ सरकार मानों प्रत्येक देशी रजवाड़े से कहती है—"पहिले यदि तुम बुरा राज्य करते थे तो घर ही में दवा हो जाती थी अर्थात् तुम्हारी प्रजा बिगड़ जाती थी और अत्याचार की समाप्ति कर देती थी। इस बात का डर ऐसा था जिससे कुराज्य के लिए कुछ रोक रहती थी। पर अब हम तुम्हारी प्रजा को इस विद्रोह रूपी उपाय का अवलंबन नहीं करने देंगे। जहाँ कहीं इस तरह का

विद्रोह होगा उसे अपनी सेना द्वारा दबाने का भार हमने अपने ऊपर लिया है। इस प्रकार अत्याचार को दूर करने का जो उपाय प्रजा के हाथ में था उसे हमने ले लिया। पर अत्याचार अवश्य दूर होना चाहिए। उसे दूर कौन करेगा? हमारा साम्राज्य भारत में है अतः हमने प्रजा की ओर से इस कर्तव्य को अपने ऊपर लिया है। जब किसी देशी रियासत की प्रजा बदअमली की शिकायत करेगी तब हम पूरी जाँच करेंगे और उसे ठीक करेंगे। यदि आवश्यक समझेंगे तो बुरा शासन करनेवाले राजा को गद्दी से उतार तक देंगे और उसके स्थान पर दूसरे को बैठावेंगे।"

अँगरेज़ी सरकार ही देशी रियासतों के कुप्रबंध और सुप्रबंध का निर्णय करनेवाली है। इस बड़ी बात को देशी रजवाड़ों को कभी न भूलना चाहिए। उन्हें सदा ध्यान रखना चाहिए कि अँगरेज़ी सरकार को इस बात का पूरा इतमीनान रहे कि वे अच्छी तरह राज्य कर रहे हैं, कम से कम उनका शासन बुरा नहीं है।

इससे यह जान लेना ज़रूरी है कि किसको अँगरेज़ी सरकार अच्छा शासन समझती है, किसको बुरा। देशी राजा महाराजों को शासन के उन सिद्धांतों को समझ लेना चाहिए जिन्हें अँगरेज़ी सरकार मानती है।

मैं उन बड़े सिद्धांतों को आगे लिखता हूँ जो अच्छे शासन के लिए आवश्यक हैं। राजा महाराजों को उन पर पूरा

ध्यान देना चाहिए क्योंकि उन्हीं पर चलने से उन्हें यश और सुख मिलेगा।

सबसे मुख्य सिद्धांत यह है। राजाओं का पहला धर्म प्रजा के सुख की वृद्धि करना है।

प्रजा का सुख किसमें है और वह सुख किस प्रकार बढ़ सकता है, हम आगे चलकर कहेंगे। यह बात बहुत ब्योरे की है जिसमें थोड़ा बहुत मतभेद भी है। पर इस सिद्धांत को सब मानते हैं कि राजा का धर्म प्रजा के सुख की वृद्धि करना है।

इस सिद्धांत को बार बार मनन करना चाहिए। इसे राजकाज में काम में लाना चाहिए। दीवान से लेकर जितने कर्मचारी हों सब पर इस बात का ज़ोर देना चाहिए कि वे सदा सब कहीं इस सिद्धांत का पालन करें।

बहुत से राजा महाराजा इस सिद्धांत को मानते हुए भी राजकाज के व्यवहार में उसके अनुसार नहीं चलते। ऐसा नहीं चाहिए।

मैं दो एक ऐसे कार्यों का दृष्टांत देता हूँ जो इस महत् सिद्धांत के विरुद्ध हैं।

मान लीजिए कि किसी राजा साहब को जवाहरात ख़रीदने के लिए बहुत सा रुपया चाहिए। इसके लिए वे राज्य के ख़ज़ाने में से बहुत सा रुपया लेते हैं अर्थात् जितना मालगुज़ारी में से अपने ख़ानगी ख़र्च के लिए उन्हें लेना चाहिए

उससे कहीं अधिक लेते हैं। यहाँ वे उस सिद्धांत के विरुद्ध आचरण करते हैं जिसे मैंने बतलाया है क्योंकि वे सर्वसाधारण के उस रुपये को स्वार्थ में लगाते हैं जो किसी न किसी तरह प्रजा के सुख की वृद्धि में लगता।

मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि राजा महाराजा जवाहरात न ख़रीदें। जब उचित और आवश्यक हो तब जवाहरात भी ख़रीदे जायँ पर एक हिसाब से।

दूसरा दृष्टांत लीजिए। कोई राजा हैं जो बिना किसी आवश्यकता के एक महल के बाद दूसरा महल बनवाते चले जा रहे हैं और इसके लिए वे राज्य के ख़ज़ाने से बहुत सा रुपया लेते हैं अर्थात् मालगुज़ारी में से जितना अपने ख़ानगी ख़र्च के लिए उन्हें लेना चाहिए उससे कहीं अधिक लेते हैं। वे उक्त सिद्धांत के विरुद्ध कार्य्य करते हैं। उनके पास काफ़ी महल होने चाहिएँ। पर उनकी भी हद है। रूम के सुलतान और मिस्र के ख़दीव ने महल बनवाते बनवाते राज्य का ख़ज़ाना ख़ाली कर दिया। यह भी मूर्खता ही है कि आज एक नया महल बनवाना और कल उसे छोड़ना।

इसी प्रकार कोई राजा अपने संबंधियों और कृपापात्रों का ख़ूब घर भरना चाहते हैं और इसके लिए राज्य के ख़ज़ाने से बहुत सा रुपया लेते हैं जो प्रजा के सुख की वृद्धि में लगता। यह भी इस सिद्धांत का उल्लंघन है। संबंधियों और कृपापात्रों की ख़ातिर मुनासिब है पर एक ठिकाने से।

जिस सिद्धांत का मैं समर्थन कर रहा हूँ उसके अनुसार धर्म्मार्थ और परोपकार में जो दान दिए जायँ उनकी भी उचित सीमा होनी चाहिए। ऐसे दान भी एक हिसाब से किए जायँ जिसमें प्रजा की सुख-वृद्धि के साधन खंडित न हों।

सारांश यह कि जब कभी राजा महाराजा कोई भारी खर्च करने को हों तब वे इस सिद्धांत का स्मरण कर लें और मन में सोचें "क्या इस खर्च से प्रजा के सुख की कुछ वृद्धि होगी?" यदि उनके मन में आवे कि "नहीं।" तो उन्हें इस खर्च को उक्त सिद्धांत के विरुद्ध समझकर रोक देना चाहिए।

बहुत से खर्च ऐसे होते हैं जिनसे प्रजा को कोई सुख नहीं होता पर राजा लोग अपने सुख के लिए उसे उठाना चाहते हैं। वे लोग इस प्रकार का खर्च करें; पर मालगुज़ारी के उस अंश में से जो उनके निज के खर्च के लिए मुक़र्रर है, अर्थात् खानगी मद से।

कोई राजा जो उक्त सिद्धांत का पालन करता है ऐसा कभी नहीं समझता कि "हमें अधिकार है कि हम राज्य की मालगुज़ारी को जिस तरह चाहें उस तरह खर्च करें"। राज्य राजा की निज की संपत्ति नहीं है बल्कि प्रजा की धरोहर है। प्रजा की मालगुज़ारी उसके हाथ में इसलिए दी गई है जिसमें वह उसे प्रजा के हित में लगावे। इस कर्त्तव्य का उसे ध्यान रखना चाहिए।

इस कर्तव्य का यह मतलब नहीं कि राजा महाराजों को ठीक ठिकाने से जैसा जी चाहे वैसा ख़र्च करने की स्वतंत्रता न रहे। जैसा मैंने ऊपर कहा है राजा महाराजा अपने मालगुज़ारी के अंश में से अर्थात् ख़ानगी मद से बेधड़क ख़र्च करें।

अत: यदि देखा जाय तो राजाओं के निज के सुख से और उक्त सिद्धांत से कोई विरोध नहीं पड़ता है। राजा लोग अपनी प्रजा को भी सुखी कर सकते हैं और साथ ही अपने को भी सुखी कर सकते हैं। बचाने की बात यह है कि राजा लोग अपने सुख के लिए प्रजा के सुख की हानि न करें।

प्रजा से मेरा अभिप्राय सब जातियों और सब संप्रदायों के लोगों से है। जहाँ तक हो सके राजा महाराजों को सब जातियों और संप्रदायों का बराबर मान रखना चाहिए। ऐसा न हो कि कुछ जातियों और संप्रदायों का जी दुखाकर कुछ जातियों और संप्रदायों पर विशेष कृपा दिखाई जाय। राजाओं को चाहिए कि अपने राज्य के सब मनुष्यों के सुख की वृद्धि करें चाहे वे हिंदू हों वा मुसलमान, धनी हों वा ग़रीब, सरदार हों वा काश्तकार। सारांश यह है कि राजाओं को अपनी सारी प्रजा का पिता वा पालनकर्ता होना चाहिए न कि किसी विशेष जाति का।

यह केवल उचित और न्यायसंगत ही नहीं है बल्कि बड़ी पक्की नीति की बात है। जो राजा अपनी सारी प्रजा पर

समान अनुग्रह रखते हैं उन्हें सारी प्रजा का बल रहता है। पर जो राजा अपनी प्रजा के किसी विशेष वर्ग ही पर अनुग्रह रखते हैं उनका बल दूसरे वर्गों के विरोध के कारण घट जाता है। राजकाज में यह बात बहुत ध्यान रखने की है।

जो कुछ मैंने अभी कहा है उसके अनुसार एक बात तो यह होनी चाहिए कि रियासत की नौकरियों के लिए जन-संख्या के हिसाब से सब जातियों और संप्रदायों में से आवश्यक योग्यता रखनेवाले मनुष्य लिये जायँ। यह भूल होगी कि केवल दक्षिणी, वा केवल गुजराती, वा केवल मुसलमान, वा केवल पारसी ही रक्खे जायँ। इन सब जातियों के लोग हिसाब से रक्खे जायँ।

दूसरी बात यह होनी चाहिए कि प्रजा के किसी एक वर्ग पर दूसरे की अपेक्षा अधिक कर न लगाया जाय।

तीसरी बात यह होनी चाहिए कि सब लोगों के साथ समान न्याय किया जाय चाहे वे किसी धर्म वा संप्रदाय के हों। मान लीजिए कि एक ब्राह्मण और मुसलमान के बीच कोई मुक़द्दमा है। उसमें किसी हिंदू राजा का ब्राह्मण का पक्षपात करना वा किसी मुसलमान शासक का मुसलमान का पक्षपात करना भारी भूल है। इसी प्रकार मित्रों, कृपा-पात्रों, संबंधियों आदि का पक्षपात भी नहीं होना चाहिए। अच्छे राज्य का एक बड़ा लक्षण यह है कि वहाँ सबके साथ समान न्याय होता है।

देशी रियासतों में बहुत से सरदार यह कहनेवाले मिलते हैं कि "राज्य तो महाराज के और हमारे वास्ते है ही; मंत्रियों का यह काम है कि जहाँ तक मालगुज़ारी वसूल करते बने करें जिससे महाराज और हम लोग ख़ूब सुख करें"। ऐसे लोग प्रजा के सुख दुख को कोई चीज़ नहीं समझते। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका यह सिद्धांत बिलकुल पोच है। राजा महाराजों को ऐसे लोगों की बातों पर कुछ भी ध्यान न देना चाहिए। कुछ दिनों में शिक्षा बढ़ने पर ऐसे विचार के लोग न रह जायँगे।

सरदार लोग प्रजा के एक अंग क्या प्रधान अंग हैं और अवश्य मान और रक्षा के अधिकारी हैं। पर यह नहीं हो सकता कि थोड़े से सरदारों के सुख के लिए बड़ी भारी प्रजा के सुख की हानि की जाय।

इतिहास अनुभव का बड़ा भारी भांडार है। इतिहास के अनुभव से यह देखा जाता है कि जिन राज्यों ने प्रजा के सुख का ध्यान रक्खा है वे सबसे अधिक काल तक रहे हैं और जिन्होंने प्रजा के सुख का ध्यान नहीं रक्खा है वे जल्दी मिट गए हैं।

इस समय हम लोगों की आँख के सामने एक अच्छा नमूना मौजूद है। अँगरेज़ी सरकार की ओर देखिए। यद्यपि भारत में उसका राज्य विदेशी है पर अब से पहले जितने राज्य यहाँ हुए हैं उन सबसे कहीं बढ़कर शक्तिमान् और कहीं

अधिक दृढ़ है। क्यों? इसलिए कि उसका पहला सिद्धांत अपनी सारी प्रजा के सुख की वृद्धि करना है। संभव है कि जहाँ वहाँ अँगरेज़ी सरकार से कोई भूल भी बन पड़ी हो और उसकी आलोचना भी हुई हो। पर सब बातों को देखते यही भाव उठता है कि भारत को अँगरेज़ी राज्य से बढ़कर वा उसके समान दूसरा उत्तम राज्य नहीं मिल सकता। इसी भाव पर अँगरेज़ी राज्य की दृढ़ता स्थिर है। जब तक यह भाव बना है तब तक अँगरेज़ी राज्य भी बना है और लोग चाहते हैं कि यह बना रहे, और यह भाव बराबर बना रहेगा क्योंकि अँगरेज़ी राज्य की व्यवस्था इस प्रकार की है कि उसमें उक्त सिद्धांत का कभी परित्याग न होगा। जहाँ तक होगा जातीय हित और जातीय कर्त्तव्य के बढ़ते हुए विचार से तथा सर्वसाधारण का मन रखने और हौसला पूरा करने की नीयत से अँगरेज़ी सरकार उक्त सिद्धांत को दिन दिन और अधिक काम में लाती जायगी।

अब यदि एक विदेशी सरकार को उक्त सिद्धांत से इतनी शक्ति और दृढ़ता प्राप्त हुई है तो देशी राजा महाराजों को भी चाहिए कि अपने यहाँ इस सिद्धांत का पूरा आदर करें। इसके अनुसार उन्हें अपने राज्यों में जान और माल की हिफ़ाजत के लिए पुलिस का अच्छा प्रबंध करना चाहिए। मामलों को तै करने और अपराधियों को दंड देने के लिए न्यायालय स्थापित करने चाहिएँ। व्यर्थ प्रजा को पीड़ित करनेवाले करों को उठा देना चाहिए।

प्रजा का सुख—प्रजा का सुख दो प्रकार का है। एक तो वह जो हर एक आदमी अपने परिश्रम से अपने लिए प्राप्त कर सकता है और दूसरा वह जिसे वह अपने परिश्रम से नहीं प्राप्त कर सकता बल्कि जो राज्य की ओर से उसे पहुँचाया जाता है।

अब मैं इन दोनों प्रकार के सुखों के थोड़े से दृष्टांत देता हूँ।

नीचे उस प्रकार के सुख के दृष्टांत दिए जाते हैं जो हर एक आदमी अपने परिश्रम से प्राप्त कर सकता है—जैसे वह सुख,

जो पूरा भोजन वस्त्र आदि मिलने से होता है।
जो अच्छा घर मिलने से होता है।
जो बरतन, असबाब, गाड़ी घोड़े आदि से होता है।
जो स्वास्थ्य का ध्यान रखने से होता है।
जो सदाचार से होता है।
जो धर्म पर चलने से होता है।

इसी तरह और भी समझिए। सच तो यह है कि मनुष्य का बहुत सा सुख तो उसी के हाथ है, अर्थात् उसी की मिहनत, किफ़ायत, बुद्धि और दूरदर्शिता आदि पर निर्भर है।

नीचे उस प्रकार के सुख के दृष्टांत दिए जाते हैं जो प्रत्येक मनुष्य अपने परिश्रम से नहीं प्राप्त कर सकता बल्कि जो सारे समुदाय की प्रतिनिधि सरकार की ओर से पहुँचाया जाता है, जैसे वह सुख—

जो इस निश्चय से होता है कि हमें कोई लूटेगा नहीं, हमारा माल न कोई ज़बरदस्तो छीनेगा, न धोखा देकर उड़ावेगा।

जो इस निश्चय से होता है कि हम मारे वा घायल नहीं किए जायँगे, हमारा अंगभंग नहीं होगा।

जो इस निश्चय से होता है कि औरों से हमसे जो झगड़ा होगा उसकी पूरी जाँच होगी और उसका ठीक निर्णय किया जायगा।

जो इस निश्चय से होता है कि हम अपने लाभ के लिए परिश्रम करने में स्वतंत्र हैं, कोई उसमें विघ्न बाधा न डालेगा।

जो यह देखकर होता है कि बनिज व्यापार तथा आने जाने के लिए देश में अच्छी अच्छी सड़कें आदि हैं।

जो यह देखकर होता है कि शहरों, क़सबों और गाँवों में स्वास्थ्य-रक्षा का अच्छा प्रबंध है जिससे रोग व्याधि का भर सक बचाव होता है।

जो यह देखकर होता है कि रोग व्याधि की शांति के अच्छे उपाय पहुँच के भीतर हैं।

जो यह देखकर होता है कि लड़कों को पढ़ाने के लिए स्कूल पाठशालाएँ हैं। इसी प्रकार और भी समझिए।

इस प्रकार लोगों के सुख के दो विभाग हुए। पहला वह सुख जो हर एक आदमी अपने लिए प्राप्त कर सकता है और दूसरा वह जिसे हर एक आदमी स्वयं नहीं प्राप्त कर सकता बल्कि जो राज्य की ओर से पहुँचाया जाता है।

इस विभाग को ध्यान में रखकर मुझे यही कहना है कि पहले प्रकार का सुख तो प्रजा ही के ऊपर छोड़ देना चाहिए अर्थात् राज्य को उसके विषय में कोई तरद्दुद न करनी चाहिए, पर दूसरे प्रकार के सुख की व्यवस्था कर्तव्य समझकर राज्य ही को करनी चाहिए।

यह बात अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि इस कर्तव्य के पालन में प्रजा को केवल दूसरे प्रकार का ही सुख न होगा बल्कि पहले प्रकार का सुख भी होगा। यदि राज्य इस कर्तव्य का पालन न करेगा तो अपने परिश्रम से सुख प्राप्त करना भी प्रजा की शक्ति के बाहर होगा। सारांश यह कि यदि राज्य इस कर्तव्य का पालन न करेगा तो प्रजा को किसी प्रकार का सुख न होगा। अतः सब देशी रजवाड़ों को अपना यह मुख्य धर्म समझना चाहिए कि अपने सुख के लिए प्रजा जो नहीं कर सकती उसे वे करें।

राजाओं का कर्त्तव्य—यदि अदालत किसी राजकर्मचारी वा ख़ास नौकर का हाज़िर होना आवश्यक समझे तो राजा महाराजों को अदालत की पूरी सहायता करनी चाहिए। अदालत में जिन जिन बातों की आवश्यकता हो उन्हें पूरा कराना चाहिए। ऐसे कर्म्मचारी और नौकर बराबर यह समझें कि हम अदालत की पहुँच के बाहर नहीं हैं, हमें अदालत के सामने अवसर पड़ने पर जाना पड़ेगा, और हमें दूसरों के स्वत्व का वैसा ही ध्यान रखना पड़ेगा जैसा और

प्रजा को। वे यह समझे रहें कि अदालत की ओर से उनके साथ कोई रिआयत नहीं की जायगी। ऐसे लोग प्राय: बड़े चालाक होते हैं। वे राजाओं का मिज़ाज परखते रहते हैं और उसी के अनुसार चलते हैं।

राजा महाराजों को चाहिए कि वे स्वयं न्याय की मान-मर्य्यादा रक्खें। जैसे, वे अपने नौकर चाकरों को भी स्वयं न मारें पीटें और न किसी तरह की चोट पहुँचावें। वे स्वयं किसी के क़ैद करने, माल असबाब ज़ब्त करने की आज्ञा न दें। राजा महाराजों को चाहिए कि जितने जुर्म के मामले वा दीवानी के झगड़े हों उन्हें अदालतों को सुपुर्द करें, वे जैसा उचित समझेंगी करेंगी। राजा महाराजों को जिसका जितना देना हो बराबर दे देना चाहिए। जिसके साथ जो व्यवहार हो उसको उन्हें उसी तरह पूरा करना चाहिए जिस तरह और आदमी करते हैं। जिसका जो कुछ चाहता हो जहाँ तक हो सके साफ़ कर देना चाहिए। ऐसा न हो कि उसे उससे हाथ धोना पड़े वा उसके लिए अदालत में जाना पड़े। यदि राजा महाराजा ऐसा करेंगे तो वैर विरोध से बचे रहेंगे, सर्वप्रिय रहेंगे और साथ ही अदालतों की मान मर्य्यादा भी दृढ़ करेंगे।

बड़ी भारी बात यह है कि राजा महाराजों को यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका कर्तव्य बहुत ऊँचा और राज-काज की सब बातों की देखभाल रखना है। छोटे छोटे

कामों में स्वयं हाथ डालना उनका काम नहीं है। राजा महाराजों को अपने राज-कर्तव्य के पालन की अभिलाषा होनी चाहिए, अमलों और कारकुन लोगों के छोटे छोटे काम करने की नहीं। जो राजा अपना राज-कर्तव्य नहीं जानते हैं अथवा राज-कर्तव्य के पालन करने में असमर्थ हैं वे ही अपने राज-कर्तव्य को छोड़कर ऐसे छोटे छोटे कामों को करने जाते हैं जिन्हें अमले और कारकुन उनसे कहीं अच्छी तरह और सोच समझकर कर सकते हैं।

मनुष्यों पर शासन करनेवाले राजा की योग्यता इसमें नहीं है कि वह सब काम आप करे। इस बात का हौसला करना एक छोटी बात है। यह आशा करना भी व्यर्थ ही है कि लोग समझेंगे कि महाराज सब काम कर सकते हैं। राजा राज्य का शरीर नहीं है आत्मा है। उसके प्रभाव से और उसके आदेश पर हाथों को काम करना चाहिए और पैरों को चलना चाहिए। उसे सोचना भर चाहिए कि क्या क्या करना होगा, पर उसके करने के लिए औरों को नियुक्त करना चाहिए। उसकी योग्यता तो युक्तियों वा उपायों को सोचने में और साधकों (करनेवालों) को चुनने में है। उसे न तो उनके (साधकों) काम के किनारे जाना चाहिए और न उनको अपने काम में हाथ डालने देना चाहिए। राजा को काम करनेवालों के विश्वास पर भी बहुत अधिक न रहना चाहिए। उसे समय समय पर उनके कामों को देखते रहना चाहिए।

उसमें उनकी भूल चूक पकड़ने की योग्यता होनी चाहिए। अच्छा राज्य वही करता है जो लोगों की योग्यता और प्रवृत्ति को पहचानता है और उन्हें उन कार्य्यों पर नियुक्त करता है जो उनकी योग्यता के अनुकूल हैं। राज्य के अधिपति की योग्यता राज्य के काम करनेवालों का शासन करने में है। जो आधिपत्य रखता है उसे काम करनेवालों को जाँचना, रोकना, और ठीक करना चाहिए; उसे उन्हें उत्साहित करना, बढ़ाना, बदलना और हटाना चाहिए; उसे सदा उन पर दृष्टि रखनी चाहिए और उनको अपने हाथ में रखना चाहिए। पर राज्य के प्रत्येक विभाग के छोटे छोटे ब्योरों में हाथ डालने से ओछापन और अविश्वास प्रकट होता है और मन में छोटी छोटी बातों की चिंता बनी रहती है जिससे राजाओं के ध्यान देने योग्य बड़ी बड़ी युक्तियों को सोचने विचारने की छुट्टी ही नहीं मिलती। बड़ी बड़ी युक्तियों को सोचने के लिए तो पूरी शांति और स्वतंत्रता चाहिए। काम काज के पेचीले ब्योरों की हैरानी न हो, छोटी छोटी बातों की ओर ध्यान न बँटा हो। जो चित्त छोटे छोटे ब्योरों में फँसता है वह उस मद्य के समान है जिसमें न तो कोई स्वाद है और न शक्ति। वह राजा जो अपने नौकरों का काम करने में लगता है, सदा सामने आई हुई बातों का ध्यान रखता है, भविष्य की ओर दृष्टि नहीं फैलाता। वह दिन के दिन जो काम आया उसी में फँसा रहता है। उसका उद्देश्य उसी तक रहता है, इससे उस काम को बड़ी

प्रधानता प्राप्त हो जाती है। पर उस काम को यदि और कामों के साथ मिलान किया जाय तो उसकी वह प्रधानता न रह जाय। जो चित्त एक बार एक ही बात का ग्रहण करेगा वह संकुचित हो ही जायगा।

बिना कई बातों को विचारे, उन्हें एक दूसरे के साथ मिलाए और इस क्रम से मन में बैठाए कि उनकी एक दूसरे से प्रधानता प्रकट हो, किसी एक बात के विषय में ठीक ठीक निर्णय करना असंभव है। वह जो राजकाज में इस नियम का पालन नहीं करता उस गवैये के समान है जो अलग अलग कई सुर निकालकर रह जाता है और उनको मिलाकर कोई राग नहीं उत्पन्न करता जो कानों को भी अच्छा लगे और जी को भी लुभावे। अथवा यों कहिए कि वह उस कारीगर के समान है जो बिना अपनी इमारत का हिसाब किताब समझे और नक्काशी आदि का क्रम मन में बैठाए रंग बिरंग के कटे हुए पत्थरों और खंभों का ढेर लगाता चला जाता है। ऐसा कारीगर कोठरी बनाते समय यह ध्यान नहीं रक्खेगा कि इसमें सीढ़ी भी लगानी होगी, भवन उठाते समय यह ध्यान न रक्खेगा कि बीच में आँगन छोड़ना होगा और इधर उधर फाटक रखने होंगे। उसका बनाया हुआ काम ऐसे जुदे जुदे खंडों का ऊटपटाँग ढेर होगा जिनका एक दूसरे से कुछ मेल नहीं और जो मिलकर कोई पूरा रूप नहीं खड़ा करते। ऐसे काम से उसे यश मिलना तो दूर रहा, सब दिन के लिए कलंक

मिलेगा। ऐसे काम से समझा जायगा कि उसकी सूझ इतनी दूर तक की न थी कि वह अपने सोचे हुए ढाँचे के सब पुरजों को एक साथ मन में बैठाकर रखता अर्थात् उसकी ग्रहण-शक्ति संकुचित थी और उसका गुण दूसरे का आश्रित था। क्योंकि वह जो एक एक अंग को ही एक साथ देख सकता है केवल दूसरों के सोचे हुए ढाँचे पर काम करने के योग्य होता है। यह निश्चय रखना चाहिए कि राज्य चलाने में भी संगीत के समान मेल मिलाने और गृह-निर्म्माण के समान हिसाब किताब बैठाने की ज़रूरत होती है। वह जो गाने में किसी एक साज को लेकर बैठता है, साधारण गवैया ही समझा जाता है पर जो सारे साजबाज का मिलान देखता है वही गाने का आचार्य वा उस्ताद माना जाता है। इसी प्रकार वह जो खंभा गढ़ता है वा दीवार जोड़ता है केवल संगतराश वा थवई है पर जो सारी इमारत का ढाँचा मन में सोचता है और उसके एक एक अंग को मन में बैठाता है, वही शिल्पी है। अस्तु, जो राजा बहुत फँसे रहते हैं और सबसे अधिक ब्योरे निपटाते हैं वे यथार्थ में राज्य नहीं करते हैं बल्कि मज़दूरों वा नौकरों का काम करते हैं। राज्य को चलाने-वाली आत्मा तो वह है जो कुछ न करके भी सब कुछ कराती है, जो सोचती और युक्ति भिड़ाती है, जो आगा पीछा देखती है, जो हिसाब किताब (इसका कि कहाँ कौन वस्तु कितनी कितनी चाहिए) बैठाती है, जो सब वस्तुओं

को क्रम से लगाती है और न जानें कब कैसा पड़े इसके लिए प्रबंध रखती है।

नियम और व्यवस्था—अँगरेज़ी राज्य में वा और कहीं जो अच्छे नियम हों उन्हें राज्य में प्रचलित कर लेना चाहिए। केवल स्वतंत्रता वा नवीनता दिखाने के लिए भेद रखना ठीक नहीं। लोगों के इस कहने की कुछ परवा न करनी चाहिए कि महाराज तो बात बात में नक़ल कर रहे हैं। यदि नियम अच्छा हो और प्रजा की रहन-सहन के अनुकूल हो तो उसकी नक़ल करने में कोई बुराई नहीं है। एक देश दूसरे देश की अच्छी बातों को ग्रहण कर सकता है। सभ्य से सभ्य जातियाँ, जिन्हें अपने गौरव और स्वतंत्रता का बहुत अभिमान होता है, इस मार्ग का अनुसरण करती हैं। यदि वे ऐसा न करें तो एक देश का संचित ज्ञान और अनुभव दूसरे देश के किसी काम ही का न ठहरे।

अपढ़, मूर्ख और स्वार्थी लोग बराबर राजा महाराजों से कोई न कोई कार्रवाई नियम वा क़ानून के विरुद्ध कराने वा औरों से करवाने की प्रार्थना किया करते हैं। वे यहाँ तक कहते हैं "क्या महाराज जो चाहें सो नहीं कर सकते? क्या महाराज को भी कोई रोकनेवाला है? यदि राज्य में महाराज की कुछ चलती नहीं है तो महाराज किस बात के हैं?" इस प्रकार की बातें बराबर किसी न किसी रूप में राजा महाराजों से कही जाती हैं। उनको चाहिए

कि ऐसी ऐसी बातें सुनकर ज़रा भी ताव में न आवें बल्कि हँसते हुए यह उत्तर दें।

"शिक्षा और विचार से यह विश्वास मेरे मन में अच्छी तरह बैठ गया है कि वही राजा सचमुच बड़ा है जो उन नियमों का आदर करता है जो प्रजा के हित के लिए बनाए गए हैं। मैं इसी विश्वास के अनुसार कार्य्य करूँगा।" इसी रीति पर चलने से राजा महाराजा बड़े और प्रजापालक कहे जा सकते हैं तथा देश के इतिहास में कुछ नाम छोड़ सकते हैं।

राज-कर्त्तव्य—जो बड़े बड़े सिद्धांत मैंने बतलाए हैं वे मेरे मन में अच्छी तरह बैठे हुए हैं। मुझे भिन्न भिन्न रियासतों में दीवानी करते करते बीस वर्ष से ऊपर हुए। इस बीच में राज्य-प्रबंध करने में ये ही सिद्धांत मेरे आधार रहे हैं। इन सिद्धांतों के अनुसार प्रजा का हित करने में मेरी आत्मा को जो संतोष प्राप्त हुआ है वह वर्णन नहीं किया जा सकता। राजा महाराजों को इन सिद्धांतों के अनुसरण से और भी अधिक संतोष प्राप्त होगा। मनुष्य के लिए इससे बढ़कर शुद्ध और श्रेष्ठ कोई आनंद ही नहीं है। यह आनंद ऐसा है जो जीवन भर रहता है। वेदों का यह उज्ज्वल सिद्धांत है कि वही मनुष्य जीता है जो दूसरों की भलाई के लिए जीता है। देश में राजा से बढ़कर, जिसके हाथ में सबसे अधिक धन और सबसे अधिक शक्ति रहती है, दूसरों की भलाई और कौन कर सकता है? यदि मेरे ऐसे साधारण

मनुष्य को प्रजा की सुख-वृद्धि के लिए सच्चा प्रयत्न करने के कारण इतना मान और यश प्राप्त हुआ है तो राजा महाराजों को प्रजा का हित करने के कारण कितनी उज्ज्वल और अचल कीर्ति प्राप्त हो सकती है समझने की बात है। पर सांसारिक यश और कीर्ति से कहीं बढ़कर फल उनके लिए रक्खा है। मैं वहाँ की बात कहता हूँ जहाँ की प्रेरणा से राजा महाराजा इतने ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होते हैं और उन्हें उपकार करने का इतना अवसर मिलता है।

सुंदर शासन के संबंध में परामर्श देते हुए मैं बेथल नामक एक यूरोपियन ग्रंथकार की बातों की ओर ध्यान दिलाता हूँ जो १८ वीं शताब्दी में हुआ है और जिसके उपदेश मनुष्य मात्र के, विशेष कर राजाओं के, बहुत काम के हैं। नीचे उसके कुछ विचार उद्धृत किए जाते हैं—

"समाज को चलानेवाले बुद्धिमान् राजा को यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि उसके हाथ में राज-शक्ति केवल राज्य की रक्षा और सारी प्रजा की भलाई के लिए दी गई है। राजकाज चलाने में उसे यह न समझना चाहिए कि जो कुछ है सो हमारे ही लिए तो है। उसे अपना ही संतोष वा अपना ही लाभ न देखना चाहिए बल्कि अपनी सारी विद्या बुद्धि राज्य वा प्रजा के हित में लगानी चाहिए जो उसके अधीन है।

"पर बहुतेरे राज्यों में चापलूसी का पाप बहुत दिनों से घुसा है जिसके कारण यह मूल मंत्र ध्यान में नहीं रहने

पाता। बहुत से जूती चाटनेवाले दरबारी अहंकारी राजाओं के मन में यह जमा देते हैं कि जन-समूह उनके लिए बना है, वे जन-समूह के लिए नहीं बनाए गए हैं। ऐसे राजा राज्य को अपनी बपौती वा निज की सम्पत्ति समझने लगते हैं। वे प्रजा वा जनसमूह को समझते हैं कि भेड़ बकरी के झुंड हैं, इनसे जिस प्रकार हो रुपया निकालो और मनमानी मौज उड़ाओ। इसी कारण अहंकार, असंतोष, और विरोध से भरे हुए सत्यानाशी युद्ध होते हैं। इसी कारण वे खलनेवाले टैक्स वा कर लगाए जाते हैं जिनकी आमदनी सत्यानाशी ठाट बाट वा भोग विलास में खपती है अथवा कृपापात्रों वा रखेली स्त्रियों पर फूँकी जाती है। इसी कारण अच्छी अच्छी जगहें अयोग्य कृपापात्रों को मिलती हैं, योग्यता और गुण का कुछ भी विचार नहीं किया जाता, तथा जिन बातों में राजाओं की रुचि नहीं होती वे दीवान मुसद्दियों पर छोड़ दी जाती हैं। ऐसे अभागे राज्य में कौन कह सकता है कि राजशक्ति सर्वसाधारण की भलाई के लिए प्रतिष्ठित है? एक महान् राजा अपने सतोगुण की वृत्तियों तक से चौकस रहता है, कुछ ग्रंथकारों के समान मेरा यह कहना नहीं है कि सर्वसाधारण का सतोगुण राजाओं के लिए गुण नहीं है। ऐसा सिद्धांत तो गंभीर विचार न करनेवाले राजनीतिज्ञों का है। भलाई, मित्रता, कृतज्ञता आदि राजा के लिए भी गुण ही हैं पर बुद्धिमान् राजा आँख मूँदकर इन्हीं की प्रेरणा पर नहीं

चलता। वह इन गुणों को धारण करता है और परस्पर के (ख़ानगी) व्यवहार में उनका पालन करता है पर राजकाज के व्यवहार में वह केवल न्याय और पक्की राजनीति का ध्यान रखता है। क्यों ? इसलिए कि वह जानता है कि 'राज्य मुझे समाज के सुख के लिए दिया गया है अतः मुझे राजशक्ति का प्रयोग करने में अपना सुख वा संतोष न देखना चाहिए'। वह अपनी भलमनसाहत को बुद्धि के अधीन रखता है। वह अपने मित्रों को जो लाभ पहुँचाता है वह निज की ओर से (राज्य की ओर से नहीं)। वह राज्य की जगहें और नौकरियाँ को योग्यता के अनुसार देता है। राज्य की ओर से वह जो कुछ इनाम देता है वह राज्य की सेवा के लिए, सारांश यह कि वह सर्वसाधारण की शक्ति सर्वसाधारण ही की भलाई में लगाता है।

"इसी शक्ति के सहारे पर राजा क़ानून वा शास्त्र की मर्य्यादा का रक्षक होता है। जब कि उसका यह धर्म है कि वह उस मर्य्यादा को भंग करनेवाले प्रत्येक धृष्ट मनुष्य को रोके तब क्या उसके लिए यह उचित होगा कि वह स्वयं उसे पददलित करे ?

"जब तक जो क़ानून वा नियम हैं तब तक राजा को उनका पालन और उनकी रक्षा करनी चाहिए। वे ही सर्व-साधारण की शांति के मूल और राजशक्ति के दृढ़ आधार हैं। जिस अभागे राज्य में मनमानी शक्ति का अधिकार है वहाँ

किसी बात का ठिकाना नहीं, बलवा, उत्पात जो न चाहे सो हो जाय। अतः राजा का धर्म और लाभ इसी में है कि वह क़ानून वा नियम का पालन करे, स्वय उसके अधीन हो। यह न कहना चाहिए कि राजा राज्य में प्रचलित क़ानून के वश में नहीं है। सब जातियों में ठीक इसका उलटा सिद्धांत बर्त्ता जाता है अर्थात् यह कि राजा क़ानून के अधीन है। यद्यपि चापलूस समय समय पर इस (सिद्धांत) के विरुद्ध चक्र चलाते रहते हैं पर बुद्धिमान् राजा देवता के समान उसका आदर करते हैं।"

अब मैं मनु के दो एक वाक्य उद्धृत करता हूँ—उनका वचन है "राजा को प्रजा का पालन उसी प्रकार करना चाहिए जैसे पिता पुत्र का करता है"।

"राजा भले मानसों को उचित पुरस्कार और दुष्टों को उचित दंड दे। न्याय का उल्लंघन उसे कभी न करना चाहिए।"

"जो राजा दंड के योग्य मनुष्य को छोड़ता है और दंड के अयोग्य मनुष्य को दंड देता है वह अन्यायी है। न्यायी वही है जो शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार दंड देता है।"

इन सबसे प्रकट है कि राजाओं को कठिन धर्म्म का पालन करना रहता है, उन्हें बड़े बड़े सिद्धांतों और नियमों पर चलना रहता है। उन्हें बनैले पशुओं की तरह मनमाना नहीं चलना रहता। उनका सबसे बड़ा कर्तव्य उस प्रजा के सुख की वृद्धि करना है जिसके ऊपर परमात्मा ने उन्हें प्रतिष्ठित किया है।

प्रजा के सुख की वृद्धि करना इस बात को मोटे तौर पर समझ लेना तो बहुत सहज है पर आजकल के समय में इसको पूरा कर दिखाना गहरे मनन और स्वार्थ-त्याग का काम है, क्योंकि आजकल लोगों को न जाने कितनी तरह की भलाइयाँ चाहिएँ और शासन-पद्धति भी एक ख़ासी विद्या हो गई है जो बिना सीखे नहीं आती। सुंदर शासन के नियमों और सिद्धांतों को ध्यानपूर्वक सीखना पढ़ना पड़ता है। अस्तु, राजाओं के लिए इतना ही बस नहीं है कि वह यह कहकर कि "मैं जानता हूँ कि प्रजा का पालन करना मेरा धर्म है" बिना कुछ सीखे पढ़े अपनी मनमानी मौज वा समझ के अनुसार जो जी में आवे करने लगे। बात यह है कि राजा को भी अपना काम सीखना पड़ता है और उसके गूढ़ नियमों और सिद्धांतों के अनुसार उसे करना पड़ता है। जो राजा इन नियमों और सिद्धांतों को नहीं मानता और उन पर नहीं चलता वह उस माँझी के समान है जो बिना पतवार की नाव चलाता है।

मैं आगे उन पत्रों के कुछ अंशों को दूँगा जो अवध की नवाबी से संबंध रखते हैं।

मैंने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया है कि प्रजा के जीवन, धन आदि की रक्षा करना राजा का धर्म है और इस धर्म के पालन के उपाय भी बतलाए हैं। अवध के नवाब इस बात में बहुत चूके और यही कारण था कि उनका राज्य अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया।

अवध के रेज़िडेंट ने लिखा है—"मैंने बहुतेरा कहा पर हज़रत सलामत (नव्वाब वाजिद अलीशाह) राजकाज के सब व्यवहार उन्हीं निकम्मे और अयोग्य कुपात्रों के ऊपर छोड़े हुए हैं, अपना सारा समय भोग विलास और धूम धड़क्के में बिताते हैं और अपने उच्च कर्त्तव्य के पालन में वैसी ही बेपरवाही दिखाते हैं। उनके राज्य के सब भागों में धन प्राण की वैसी ही अरक्षा बनी है और सब मुहकमों में वैसा ही कुप्रबंध और वैसी ही अंधेर फैली हुई है"।

दूसरे स्थान पर रेज़िडेंट फिर लिखते हैं—"यह कोई अचंभे की बात नहीं है कि अधिकार पाकर जवान नवाब साहब क्षुद्र लोगों के साथ में पड़कर और उतनी ही शिक्षा पाकर जितनी देशी राजकुमार पाते हैं यह समझने लगें कि संसार में मुझे जो चाहे सो करने का सबसे बढ़कर सुबीता मिला है और बादशाह की इच्छा को रोकनेवाला कोई नियम वा बंधन नहीं"।

आगे चलकर रेज़िडेंट बड़े लाट साहब को लिखते हैं "अदालत और कहीं तो हैं नहीं, राजधानी में हैं, सो भी किसी काम की नहीं"।

इसका फल यह था कि अवध में न्यायालय की दशा बहुत ही बुरी थी। देखना चाहिए कि अँगरेज़ सरकार ने एक मामले की ओर कैसा ध्यान दिया जिसमें एक आदमी मेल मुलाक़ात के ज़ोर से सज़ा से साफ़ बच गया यद्यपि इस

बात का पक्का सबूत था कि उसने हत्या की है। उस अव-सर पर भारत सरकार ने लखनऊ के रेज़िडेंट को इस प्रकार लिखा—

"आप बादशाह से भेंट करें। आप हज़रत सलामत को सूचित करें कि लखनऊ में अभी जो यह घोर अन्याय हुआ है कि साफ़ सबूत रहने पर भी हत्यारा छोड़ दिया गया इस पर गवर्नर जनरल साहब बहुत ही असंतुष्ट हैं। आप यह भी कहें कि बादशाह के राज्य में ऐसे ऐसे मामले बराबर हो रहे हैं जिनका फल यही होगा, जैसा कि उन्हें कई बार चेताया जा चुका है, कि बादशाही अधिकार बिलकुल ले लिया जाय"।

रेज़िडेंट ने यह भी शिकायत की कि अवध में न्यायालयों की ठीक व्यवस्था न होने के कारण अँगरेज़ सरकार की जो प्रजा वहाँ है वह भी कष्ट पा रही है। जब कि अवध में कुप्र-बंध के कारण अँगरेज़ी प्रजा कष्ट पा रही है तब अँगरेज़ सर-कार चुप नहीं रह सकती।

रेज़िडेंट ने साफ़ लिखा कि "अवध में पुलिस का कोई ठीक प्रबंध ही नहीं है। वर्तमान राज्य-प्रणाली में अवध में धन और प्राण की रक्षा का लेश भी नहीं है। देश के इस भाग में बिना बहुत से हथियारबंद आदमी साथ लिए लोगों का रास्ता चलना असंभव है।"

मैं समझता हूँ कि मैंने जितनी बातें लिखी हैं और जितने दृष्टांत सामने रक्खे हैं उनसे यह बात मन में अच्छी तरह

बैठ गई होगी कि अच्छी पुलिस रखना और अच्छे न्यायालयों का स्थापित करना कितना आवश्यक है। इनके बिना धन, प्राण और स्वतंत्रता की रक्षा हो नहीं सकती। और बिना इस रक्षा के राज्य रह नहीं सकता, किसी न किसी दिन जायगा, चाहे जल्दी या देर में।

मैं देशी राज्यों का बड़ा भारी शुभचिंतक हूँ। मैं चाहता हूँ कि वे बराबर बने रहें। अतः मेरा कहना है कि राजा महाराजा इन सब बातों को स्वयं ही मन में धारण करके न रह जायँ बल्कि जैसे हो तैसे इन्हें अपनी संतानों को भी बतलावें और साथ ही ऐसा उपदेश दें कि उनकी संतान भी अपनी संतानों को इसी प्रकार बतलावे जिसमें इन बातों का तार न टूटे, पीढ़ी दर पीढ़ी ये बातें मन में बैठती रहें। देशी रजवाड़े जब तक अपने राज्य में धन, प्राण और स्वतंत्रता की रक्षा बनाए रक्खेंगे तब तक वे अचल रहेंगे।

स्वास्थ्य—राज्य का दूसरा बड़ा कर्त्तव्य जहाँ तक हो सके प्रजा के स्वास्थ्य की रक्षा करना है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का स्वास्थ्य अधिकतर उसी पर निर्भर है—अर्थात् उसके भोजन, वस्त्र, व्यायाम, चिकित्सा आदि पर। हर एक को भला चंगा रहने की स्वाभाविक इच्छा होती है इससे वह अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखता ही है। पर सर्वसाधारण के स्वास्थ्य से संबंध रखनेवाली बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनका प्रबंध एक एक व्यक्ति नहीं कर सकता। वे ऐसी बातें हैं जिनका

प्रबंध राज्य ही की ओर से हो सकता है। यदि राज्य उनका प्रबंध अपने हाथ में न लेगा तो उनका प्रबंध होगा ही नहीं। मैं इन बातों में जो मुख्य मुख्य हैं उन्हें बतलाता हूँ।

जहाँ बहुत से लोग पास पास बसते हैं, जैसे शहरों और क़सबों में वहाँ सफ़ाई का सबसे पहले ध्यान रखना चाहिए। गलियों में से गलीज और कूड़ा करकट दूर होना चाहिए। नल दुरुस्त रहने चाहिएँ। अच्छी ताज़ी हवा ख़ूब आनी चाहिए, इत्यादि। यही सब स्वास्थ्य-प्रबंध कहलाता है। इसके सिवा लोगों के आराम, सुबीते और रक्षा आदि के लिए भी अनेक प्रबंध रहें। जैसे गाड़ी घोड़े आदि आने जाने के लिए अच्छी अच्छी सड़कें हों। सड़कों पर छिड़काव हो, रोशनी हो। आग बुझाने की कलें हर समय तैयार रहें।

सर्वसाधारण के स्वास्थ्य के लिए एक और आवश्यक बात यह है कि लोगों को नित्य के ख़र्च के लिए साफ़ और काफ़ी पानी मिले। गरम देशों के लिए तो यह एक बड़ी भारी न्यामत है। जो राजा महाराजा इसका प्रबंध करेंगे उन्हें बहुत दिनों तक लोग आशीर्वाद देंगे।

सर्वसाधारण की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए यह भी आवश्यक है कि नगर की घनी बस्ती में रहनेवाले लोगों के लिए कुछ खुली और सुहावनी जगहें हों जहाँ वे गाड़ी घोड़े पर हवा खा सकें वा पैदल टहल सकें और जहाँ वे संध्या सबेरे अपने अवकाश का समय बितावें जिससे उनके स्वास्थ्य को लाभ पहुँचे।

सर्वसाधारण की स्वास्थ्यरक्षा के लिए टीका लगाने का प्रबंध भी होना चाहिए जिससे लोग शीतला के भयानक रोग से बचे रहें।

लोगों की स्वास्थ्य-रक्षा का एक उपाय यह भी है कि बस्तियों के बीच में अस्पताल और औषधालय स्थापित हों जहाँ रोगियों को सहज में दवाएँ मिल सकें, उनके रोग की देख भाल हो सके।

जिस राज्य को अपनी प्रजा के सुख की चिंता होती है वह इन सब बातों का प्रबंध करता है। ऐसी बातों में जो रुपया ख़र्च होता है वह सफल ही होता है। प्रजा का यह स्वत्व है कि उसके स्वास्थ्य की इस प्रकार रक्षा की जाय। जो राजा अपनी प्रजा का पालन करता है वह लोगों की स्वास्थ्य-रक्षा का पूरा प्रबंध रखता है।

इस संबंध में मुझे यही कहना है कि राज्य की ओर से लोगों का स्वास्थ्य बढ़ाने, रोग दूर करने और क्लेश हटाने के लिए जो कुछ किया जायगा वह सुराज्य का लाभ समझा जायगा। अच्छा राजा सर्वसाधारण के स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखता है जो कि सर्वसाधारण के सुख का प्रधान अंग है और राजा का प्रधान कर्त्तव्य है।

पर इस बात का भी ध्यान रहना चाहिए कि सर्वसाधारण का स्वास्थ्य बढ़ाने की चिंता में कहीं राजा महाराजा व्यर्थ एक एक आदमी की स्वतंत्रता में न बाधा डालें। स्वतंत्रता

एक बड़ी अनमोल वस्तु है। किसी पर यह ज़ोर न डालना चाहिए कि तुम भूख मारकर यही भोजन करो, यही दवा खाओ, या यही कसरत करो। इन सब बातों को तो हर एक आदमी अपना आप समझ बूझ लेगा। राज्य की कार्रवाई तो उन्हीं मामलों तक रहनी चाहिए जिनमें मोटे तौर पर सबकी भलाई है—जैसे सफ़ाई कराना, अच्छे नल लगवाना, साफ़ पानी पहुँचाना, अस्पताल खोलना, टीका लगाने का प्रबंध करना इत्यादि, इत्यादि। ऐसे मामलों में राज्य जो कुछ करता है वह समाज की ओर से और समाज के भले के लिए।

इस ढंग से चलने में भी राज्य को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह कहीं लोकोपकार करने की झोंक में बहुत न बढ़ जाय। लोगों की विद्या-वृद्धि की जो वर्त्तमान अवस्था है और उसके अनुसार उनके जो विचार हैं उनसे बहुत आगे न बढ़ा जाय। किसी मामले में राज्य को कहाँ तक बढ़ना चाहिए और कहाँ तक जाना चाहिए, इसका विचार समय समय पर यह देखकर करना चाहिए कि किसी कार्रवाई से लोगों की भलाई कितनी होगी और लोगों की ओर से विरोध कितना होगा।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि स्वास्थ्य के मामले में व्यर्थ एक एक आदमी की स्वतंत्रता में बाधा न पड़ने पावे। पर राज्य यह कर सकता है कि बिना लोगों की स्वतंत्रता में बाधा डाले अपनी राय प्रकाशित करे। जैसे यदि हैज़ा फैला हो तो

स्वास्थ्य-विभाग द्वारा राज्य की ओर से लोगों को यह सूचना दी जाय कि इन इन युक्तियों से हैज़े से बच सकते हैं, ये ये दवाएँ हैज़े में उपकारी पाई गई हैं तथा इन इन उपायों से हैज़े का फैलना रुक सकता है।

जब कभी हैज़ा, मरी, शीतला आदि रोग फैलें तो राज्य को उनकी रोक और चिकित्सा के लिए विशेष प्रबंध करना चाहिए। जिन जिन स्थानों में ये रोग फैले हों वहाँ कुछ अधिक वैद्य डाक्टर तैनात करके भेजे जायँ। वहाँ के लोगों को दवा आदि का अधिक सुबीता कर दिया जाय। यदि स्वास्थ्य-विभाग प्रस्ताव करे कि यहाँ ये ये कार्रवाइयाँ हों तो राज्य को चाहिए कि उन्हें चटपट मंज़ूर कर ले।

सर्व साधारण के स्वास्थ्य के संबंध में स्वास्थ्य-विभाग ही की सम्मति पर राज्य को चलना चाहिए।

प्रजा की प्राणरक्षा—ऊपर कहा जा चुका है कि राजा का कर्तव्य प्रजा का स्वास्थ्य बढ़ाना है। स्वास्थ्य-वृद्धि के मुख्य मुख्य उपाय भी बतलाए जा चुके हैं। राजा का दूसरा भारी कर्तव्य यह है कि जहाँ तक हो सके प्रजा को भरपूर भोजन इत्यादि प्राप्त करने का सुबीता कर दे। यह प्रत्यक्ष है कि भरपूर भोजन के बिना लोग सुखी नहीं रह सकते।

सब से पहले तो यह कहना है कि राज्य इस विषय में कुछ अधिक नहीं कर सकता। बहुत कुछ तो लोगों के निज के परिश्रम के ऊपर है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने

और अपने परिवार के लिए कोई न कोई काम करना पड़ता है और उसके द्वारा जीविका प्राप्त करनी पड़ती है। प्रकृति ने हर एक के लिए भोजन इतना आवश्यक रक्खा है कि वह आप अपने भोजन के लिए भर सक सब कुछ करता है। इसके लिए उस पर कोई ज़ोर डालने की ज़रूरत नहीं. इस विषय में तो स्वाभाविक प्रवृत्ति ही पूरा काम करती है।

स्वाभाविक प्रवृत्ति केवल भोजन ही प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि सुख पहुँचानेवाली और बहुत सी वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए उभाड़ती है। अब राज्य का धर्म यह है कि इस प्रवृत्ति को उचित स्वच्छंदता के साथ काम करने दे। राज्य इस बात का ध्यान रक्खे कि इस स्वाभाविक प्रवृत्ति में मनुष्यों की उत्पन्न की हुई कोई बाधा वा रुकावट न पड़ने पावे। राजा को यह कर्त्तव्य साफ़ साफ़ समझना और दृढ़ता के साथ पूरा करना चाहिए।

अब यहां पर यह देखना है कि राजा को क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए कि इस स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार पूरा पूरा कार्य्य हो और उसका अच्छा फल हो।

जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, समाज के प्रत्येक व्यक्ति में अपने सुख के साधन इकट्ठे करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति के अनुसार वह धन कमाने के लिए भर सक पूरा प्रयत्न करेगा। राज्य को चाहिए कि धन, प्राण, शरीर और स्वतंत्रता की रक्षा करके इस स्वाभाविक प्रवृत्ति

की भी भरपूर रक्षा करे। इन प्रयत्नों के लिए पूरी राह खोल दे और कमानेवाले को उस धन का सुख भोगने दे। यदि धन, प्राण, शरीर और स्वतंत्रता की रक्षा न रहे तो क्या हो, सोचिए तो, बहुत से लोग मन में यही कहें—"मैं धन क्यों कमाऊँ और कमाकर क्यों बचाऊँ जब कि इस बात का कोई ठिकाना ही नहीं कि मैं कब मार डाला जाऊँ, घायल कर दिया जाऊँ, क़ैदख़ाने में डाल दिया जाऊँ, या लूट लिया जाऊँ"?

इससे सिद्ध हुआ कि धन, प्राण, शरीर और स्वतंत्रता की रक्षा समाज के धनोपार्जन और धनसंचय के लिए आवश्यक है। लोगों को किसी बात का डर नहीं रहना चाहिए।

इस बात को थोड़े और ब्योरे के साथ मैं कहता हूँ। लोगों को यह डर न रहना चाहिए कि हम शहर में, दिहात में वा सड़क पर लूट लिए जायँगे। सेठ साहूकार अपना रुपया अपने पास बेखटके रख सकें। किसान अपने अनाज का ढेर बेखटके रख सकें। एक तरकारी बेचनेवाली ग़रीब बुढ़िया को भी इस बात का खटका न रहे कि मेरी तरकारी कोई छीन लेगा। सारांश यह कि छोटे बड़े, ग़रीब अमीर सबको इस बात का निश्चय रहे कि हमारी संपत्ति हमारे पास रहेगी और हम उसका सुख उठावेंगे। लोगों को इस बात का कुछ भी खटका न रहे कि हमारे साथ ज़बरदस्ती होगी, हमें कोई धोखा देगा, हम झूठे मामले मुक़दमों में फँसेंगे, हमारे साथ राज्य कोई मनमानी कार्रवाई करेगा।

ये सब बातें उन उपायों से प्राप्त हो सकती हैं जिन्हें मैं पहले कह चुका हूँ अर्थात् शहरों और गाँवों में अच्छी पुलिस रखने से, योग्य अदालतों को बैठाने से और अच्छे अच्छे क़ानून जारी रखने से।

प्रजा के सुख-सम्पत्ति की वृद्धि---राज्य को धन की बढ़ती के लिए और भी बहुत सी बातें करनी चाहिएँ जिनमें से कुछ मैं आगे बतलाता हूँ।

राज्य के लोगों को अपने धन का पूरा उपभोग स्वच्छंदतापूर्वक अर्थात् बिना व्यर्थ की रुकावट वा भय के करने देना चाहिए जैसे, किसी के लिए यह रोक न होनी चाहिए कि वह गाड़ी घोड़े पर चढ़कर न चले। किसी को सड़क के किनारे भारी मकान बनाने से न रोकना चाहिए। इसी प्रकार, कोई बढ़िया कपड़े वा क़ीमती गहने पहनने से न रोका जाय। सारांश यह कि लोगों को इस बात की पूरी स्वतंत्रता रहे कि वे जिस प्रकार चाहें अपने धन को भोगें वा दिखावें। राजा महाराजा अपनी प्रजा को जितना ही सुखी देखें उतना ही उन्हें सुखी होना चाहिए।

एक बड़ी भारी बात और है। हमारे यहाँ के लोग अधिकांश खेती ही पर निर्वाह करते हैं। धरती धन को देने-वाली है। किसान भूमि पर परिश्रम करते हैं और भूमि उन्हें फल देती है। इससे सिद्ध हुआ कि भूमि के संबंध में और किसानों के संबंध में जो राज्यप्रबंध होगा उसका प्रजा के सुख के साथ बहुत कुछ लगाव होगा।

यह स्मरण रखना चाहिए कि अधिकांश लोग जो स्थिर भाव से देश में बसे हैं किसान हैं अर्थात् खेती का काम करते हैं। जिस प्रकार वह भूमि, जिसे वे जोतते हैं, अचल है उसी प्रकार वे भी अचल हैं। अधिकतर किसान जब तक उन पर लगातार जुल्म न हो अपनी भूमि को छोड़ने का कभी विचार नहीं करते। किसान हमारे यहाँ की स्थिर जन-संख्या के एक प्रधान अंग हैं और जो फ़सल वे हर साल पैदा करते हैं वह हमारे देश के धन का एक प्रधान भाग है। इसी से रैयत और भूमि के संबंध में बहुत ठीक प्रबंध रहना चाहिए।

किसानों को सुखी रखने और भूमि से धन की बढ़ती करने के लिए यह आवश्यक है कि ज़मीन की मालगुज़ारी बहुत ज़्यादा न हो, इतनी जितने में रैयत अपना और अपने बालबच्चों का पालन सुख से कर सके। बहुत सी देशी रियासतों में इस सिद्धांत का पालन ठीक ठीक नहीं होता है। बहुत सी रियासतें रैयत से जहाँ तक हो सकता है मालगुज़ारी ऐंठती हैं और इससे जनसंख्या का एक बड़ा भाग दरिद्र हो जाता है। यह बात उस मूल सिद्धांत के बिलकुल विरुद्ध है जिसकी ऊपर चर्चा हुई है अर्थात् राज्य का पहला उद्देश प्रजा के सुख की वृद्धि करना है।

दूसरी बात जो प्रजा को सुखी करने और भूमि से धनो-पार्जन की वृद्धि करने के लिए आवश्यक है वह यह है कि किसानों के क़ब्ज़े में काश्त अच्छी हो। किसानों को यह

पूरा विश्वास रहे कि जब तक रियासत को लगान बराबर देते जायँगे तब तक हम बेदख़ल न किए जायँगे। किसानों को यह भरोसा रहे कि यदि हम लगान बराबर समय पर देते जायँगे तो ज़मीन हमारे क़ब्ज़े में पीढ़ी दर पीढ़ी चली जायगी। बुद्धि से भी यह बात ठीक ठहरती है और अनुभव से भी यह बात पाई गई है कि क़ब्ज़े का ठीक ठिकाना न रहने से खेती की वृद्धि नहीं हो सकती।

एक और बात जो प्रजा को सुखी करने और भूमि से धन बढ़ाने के लिए आवश्यक है वह यह है कि जब किसानों की पूँजी और परिश्रम लगने से भूमि की उपज बढ़ जाय तब राज्य को उसके कारण अपना कर बढ़ाकर किसानों को उस उचित फल से वञ्चित न करना चाहिए जो उन्हें अपनी पूँजी और परिश्रम के कारण प्राप्त हुआ है। यदि रियासत ऐसा करेगी तो किसान कहेंगे कि हमें क्या पड़ी है कि भूमि को अधिक उपजाऊ करने के लिए अधिक परिश्रम और पूँजी लगावें। इससे भूमि की उपज बढ़ेगी नहीं चाहे घट भले ही जाय।

जब कि भूमिकर ऊपर लिखी व्यवस्था के अनुसार ठीक ठीक अर्थात् न बहुत थोड़ा न बहुत अधिक एक बार निश्चित हो गया तब राजा महाराजों को और मनमाने ऊपरी कर जैसे गद्दी और ब्याह-शादी आदि के नज़राने न लगाने चाहिएँ।

एक बुराई और है जिसे बचाना चाहिए। प्रायः ऐसा हुआ है कि राजा महाराजों के पास साधु संन्यासी वा ऐसे ही

और लोग आए हैं और कुछ वार्षिक सहायता की प्रार्थना की है। राजा महाराजों ने क्या किया कि उन्हें सनद दे दी कि इन इन गाँवों और परगनों से असामी पीछे वा हल पीछे इतना रुपया वसूल कर लिया करो। इस प्रकार का अधिकार देना बहुत ही बुरा है क्योंकि इससे किसानों को हानि पहुँचती है।

जिन उपायों से भूमि की उपज बढ़े वा अच्छी हो उनको काम में लाना चाहिए।

खेती की उपज इन इन उपायों से बढ़ती है जैसे अच्छी जोताई, अच्छी खाद, और अच्छी निराई।

सिंचाई का प्रबंध करने से भी भूमि की फ़सल बहुत अच्छी हो सकती है। इस उपाय से जिस भूमि में पहले कोई मोटा अन्न होता था उसमें ईख हो सकती है, जहाँ १००) बीघे की फसल होती थी वहाँ ५००) बीघे की फ़सल हो सकती है। इससे किसानों को और सारी प्रजा को लाभ पहुँचेगा।

इसलिए राज्य को चाहिए कि सिंचाई के लिए ताल कुएँ खुदवावे, नहर बनवावे तथा और जो प्रबंध हो सके करे।

किसी देश में भूमि की उपज बढ़ाने का एक और उपाय यह है—ऐसे नियम बनें, जिनसे किसानों को ऊसर ज़मीन सुबीते में और पक्के क़ब्ज़े के साथ मिले।

भूमि के अतिरिक्त धन के और भी मार्ग हैं। इनमें से मुख्य कारीगरी है। कारीगरी से बहुत से लोगों का पालन होता है। इससे कारीगरी को पूरा बढ़ावा देना चाहिए।

यह आजकल और भी ज़रूरी है क्योंकि आबादी दिन दिन बढ़ रही है, इतनी ज़मीन कहाँ से आवेगी कि जिसमें सबका निर्वाह हो। जिन लोगों को खेती के लिए भूमि न मिल सके उनके लिए तरह तरह की कारीगरी का मैदान खुला रहना चाहिए।

अस्तु, लोगों की जीविका की बढ़ती करने और देश में धनोपार्जन की वृद्धि करने के लिए ये बातें आवश्यक ठहरीं—

(क) लोगों के प्राण, धन, शरीर और स्वतंत्रता की रक्षा रहे।

(ख) लोग अपने धन का पूरा सुख भोगने पावें।

(ग) भूमि धन का एक प्रधान मार्ग है इससे मालगुज़ारी बहुत अधिक न होनी चाहिए।

(घ) भूमि के अधिकार की पूरी रक्षा रहनी चाहिए।

(च) किसान अपनी पूँजी और अपना परिश्रम लगाकर ज़मीन की पैदावार में जो बढ़ती करें उस पर राज्य की ओर से कर न बढ़ाया जाय, यदि बढ़ाया भी जाय तो बहुत दिनों के पीछे।

(छ) ज़मीन की ठीक ठीक नाप और बंदोबस्त हो।

(ज) नज़राना आदि मनमाने ऊपरी कर न लगाए जायँ।

(झ) साधु पुरोहित आदि को गाँवों में जाकर असामी पीछे वा हल पीछे कुछ वसूल करने का अधिकार न दिया जाय।

(ट) पैदावार की रपतनी पर महसूल न लिया जाय। यदि लिया भी जाय तो थोड़ा।

(ठ) अनाज पर किसी तरह का महसूल न लगाया जाय।

(ड) भूमि की अच्छी जोताई, अच्छी खाद, और अच्छी निराई के लिए जहाँ तक सुबीते हो सकें कर दिए जायँ।

(ढ) सिंचाई के लिए कूएँ आदि खुदवाए जायँ।

(त) सड़क और रेल बने जिससे मनुष्यों के और माल के आने जाने में ख़र्च कम पड़े।

(थ) किसानों को ऊसर ज़मीन सुबीते में और पूरे क़ब्ज़े के साथ मिले।

राज्य की इमारतें—राज्य की इमारतों को बनवाने का एक अलग मुहकमा चाहिए। जिसका एक ऐसा योग्य अफ़सर हो जिसे इंजीनियरी की पूर्ण शिक्षा मिली हो।

इस मुहकमे का हिसाब रखने और जाँचने का पूरा प्रबंध चाहिए जिससे एक एक रुपए का ख़र्च दर्ज रहे और उसकी जाँच हो।

इस मुहकमे को जितने रुपयों की आवश्यकता हो उतना रुपया चट मिलना चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा तो यह मुहकमा सुस्त पड़ जायगा। ऐसी किफ़ायत से कोई लाभ नहीं।

यदि कोई बड़ी, भड़कीली, और लागत की इमारत खड़ी करनी हो, विशेष कर राजधानी में, तो उसका ढाँचा आदि तैयार करने के लिए अच्छे से अच्छे शिल्पी नियत किए जायँ। यह बहुत ही आवश्यक है। यदि इसका ध्यान न रक्खा

जायगा तो लाखों रुपए व्यर्थ बरबाद होंगे और भद्दी इमारतें खड़ी कर दी जायँगी जिनसे बनानेवालों का अनाड़ीपन ही प्रकट होगा।

इमारत बनवाने में आँख मूँदकर यूरोपियन ढंग की नक़ल न करनी चाहिए। यूरोपियन ढंग यूरप ही के लिए ठीक है। हम लोगों को वही ढंग काम में लाना चाहिए जो हमारे देश के अनुकूल हो और जिसका व्यवहार सब दिन से हमारे यहाँ चला आया है। बड़ौदे में कालिज महल और जमनाबाई अस्पताल अच्छे ढाँचे पर बने हैं।

नियम यह होना चाहिए कि इमारत बनने का काम तब तक शुरू न हो जब तक कि ढाँचा और तख़मीना पेश न किया जाय और मंज़ूर न हो जाय।

राज्य की ओर से जो काम बनें वह अच्छे ढंग पर बने। काम पुख़्ता और सुंदर हो जिसमें कई पीढ़ियों तक उसकी क़दर रहे। इसमें जो ख़र्च और तरद्दुद हो उसे उठाना चाहिए।

जहाँ तक हो सके काम ठेके पर बनवाए जायँ। ठेके का नियम कई बातों में अच्छा है।

राज्य में जो जो काम बने उनसे राज्य के मज़दूरों और कारीगरों का गुज़ारा हो। बाहरियों की अपेक्षा उन्हें लगाना अच्छा है। बाहर से सामान मँगाने की अपेक्षा अपने राज्य से सामान लेना अच्छा है।

राज्य की इमारतों, सड़कों और पुलों की मरम्मत में जो ख़र्च लगे उसे लगाना चाहिए। यदि राजा महाराजा कोई नए काम न बनवावें तो जो पहले के बने हुए हैं कम से कम उनकी तो रक्षा करें। किसी रियासत की इमारतों का बेमरम्मत रहना उस रियासत के लिए बदनामी की बात है।

जहाँ मरम्मत का वार्षिक व्यय प्रति वर्ष बहुत घटता बढ़ता न रहता हो वहाँ सालाना मरम्मत का बँधा ख़र्च मंज़ूर हो जाना चाहिए जिसमें बार बार का झंझट न रहे, समय का बचाव हो और मरम्मत भी ठीक वक्त पर हो जाया करे।

अच्छे ढाचे पर बनी हुई बड़ी और लागत की इमारतों की मरम्मत करने और उनको बढ़ाने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो काम नया बने वह पुराने के मेल में हो। देशी रियासतों में प्राय: इसका ध्यान नहीं रक्खा जाता।

कचहरी, अदालत, जेल, स्कूल आदि की इमारतें सभ्य राज्य के लिए आवश्यक हैं। पर ये मुनाफ़े के काम नहीं हैं। इनसे लोगों के धन की बढ़ती सीधे नहीं हो जाती। पर ये अत्यंत आवश्यक और ध्यान देने योग्य हैं।

कचहरी मुनाफ़े का काम नहीं है क्योंकि इससे न तो देश के धनोपार्जन में वृद्धि होती है और न व्यय की बचत होती है। सींचने का कुआँ मुनाफ़े का काम है क्योंकि उससे फसल की बढ़ती होती है। इसी प्रकार सड़क बनाना भी मुनाफ़े का काम है क्योंकि इससे माल की रवानगी के ख़र्च में बहुत कुछ बचत होती है।

अस्तु, राज्य में मुनाफ़े के कामों को ख़ूब बढ़ाना चाहिए। जितने ही ये काम अधिक होंगे उतनी ही देश की बढ़ती होगी। राजा महाराजा आजकल नए देश नहीं जीत सकते हैं, पर जो देश उनके अधिकार में हैं उनका मोल वे इन मुनाफ़े के कामों से बढ़ा सकते हैं।

इस देश में सबसे मुख्य काम सींचने के लिए कुएँ, ताल्लाब खुदवाना और अच्छी अच्छी सड़कों का बनवाना है।

कम लागत में ऐसी कच्ची सड़कें बहुत सी बन सकती हैं जिन पर सूखे दिनों में बैलगाड़ी, छकड़े आदि मज़े में चल सकें।

भारतवर्ष में पोखरे और तालाब बड़े काम के होते हैं। राज्य को चाहिए कि वह इनकी मरम्मत रक्खे।

यदि बहुत ख़र्च न हो तो दलदल की ज़मीन निकालने और ऊसर भूमि को उपजाऊ करने का भी राज्य को प्रबंध करना चाहिए।

मंदिर, धर्मशाला तथा ऐसी ही सबके काम आनेवाली और और इमारतों की मरम्मत का भी ध्यान राज्य को रखना चाहिए।

शिक्षा—मैं अब यहाँ कुछ ऐसे मोटे मोटे सिद्धांतों का वर्णन करूँगा जिनके अनुसार राज्य के शिक्षा-विभाग को चलना चाहिए।

अँगरेज़ी भाषा के द्वारा जो उच्च शिक्षा पाना चाहते हों उन्हें उस प्रकार की शिक्षा मिलने का प्रबंध होना चाहिए।

जो लोग अँगरेज़ी भाषा के द्वारा उच्च शिक्षा पावेंगे वे समाज में अत्यंत उन्नत विचार के मनुष्य होंगे। वे उन्नति-साधन में सबसे अधिक सहायक होंगे, वे मूर्खता और अंधविश्वास की बातों को दूर करने में सबसे आगे रहेंगे। मेरा तो विश्वास क्या दृढ़ निश्चय है कि भारतीय जन-समाज बिना ऊपर लिखी बातों के समावेश के जहाँ का तहाँ पड़ा रहेगा, एक डग आगे न बढ़ेगा।

अँगरेज़ी साहित्य, विज्ञान और दर्शन अँगरेज़ अच्छा पढ़ा सकते हैं। इससे स्कूलों और कालिजों में अँगरेज़ अध्यापक रहने चाहिएँ। स्वदेशानुराग के कारण, वा किफ़ायत के ख़्याल से देशी आदमियों ही को रखना ठीक नहीं है। देशी लोग अँगरेज़ अध्यापकों के सहायक के रूप में बहुत अच्छा काम करेंगे, विशेष कर गणित और पदार्थ-विज्ञान पढ़ाने में।

धर्म संबंधी शिक्षा ज्ञान-मूलक हो, अर्थात् किसी विशेष मत की शिक्षा न दी जाय।

मेरी समझ में छोटी छोटी चुनी हुई पुस्तकों द्वारा स्कूलों में सर्वदेशीय सदाचार की शिक्षा होनी चाहिए। इसी प्रकार उस सदाचार की शिक्षा भी हो जिसका पालन राज्य में दंड-भय से कराया जाता है। यह बहुत आवश्यक है कि लड़कों को आरंभ ही से यह बतलाया जाय कि कौन कौन सी नीयत और कौन कौन से काम बुरे हैं और किनके लिए राज्य से दंड मिलता है। इसके सिखाने में थोड़ा ही समय लगेगा पर

इसके द्वारा बहुत से युवा पुरुष ऐसे कर्मों से बचे रहेंगे जो नीति-विरुद्ध हैं वा न्याय से दंडनीय हैं।

राजा महाराजों को चाहिए कि वे अपने यहाँ के सरदारों, सेठ साहूकारों पर इस बात का दबाव डालें कि वे अपने लड़कों को स्कूल भेजें।

ऐसे लोगों के अनुकरण के लिए राजा महाराजों को चाहिए कि वे अपने तथा अपने संबंधियों के लड़कों को भी स्कूल भेजें।

यह स्मरण रखना चाहिए कि शिक्षितों को अधिक आश्रय देने से शिक्षा को बहुत उत्तेजना मिलती है। राज्य के भिन्न भिन्न विभागों के अधिकारियों को इस बात की ताकीद रहे कि उनके यहाँ जो जगहें खाली हों उन्हें वे कार्य्य की उत्तमता के विचार से शिक्षितों को दें।

स्कूलों वा कालिजों में जो अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके हों उनमें से कुछ को छात्रवृत्तियाँ दी जायँ जिसमें वे प्रयाग, कलकत्ता, बंबई आदि जाकर और ऊँची शिक्षा प्राप्त करें। छात्र वृत्तियाँ योग्य लोगों को दी जायँ और कुछ उचित शर्तों के साथ।

राजा महाराजों को मुख्य मुख्य परीक्षाओं और इनाम बाँटने के उत्सवों में सभापति का आसन ग्रहण करके तथा उत्साहपूर्ण व्याख्यान देकर अपनी रुचि विद्या की ओर दिखानी चाहिए। यह उनके राजकर्तव्यों में से है।

सर्व साधारण के लिए पुस्तकालय, सुबोध व्याख्यान तथा शिक्षा के ऐसे ही और और साधनों को सहायता पहुँचानी चाहिए और उनकी वृद्धि करनी चाहिए।

इन उपायों को धीरता के साथ काम में लाने से धीरे धीरे प्रजा की बुद्धि और विवेक की वृद्धि होगी और राज्य का बड़ा भारी कर्तव्य पूरा होगा।

राजा अपने राज्य में सबसे बड़ा और शक्तिमान् पुरुष होता है इससे वह लोगों की चाल सुधारने के लिए बहुत कुछ कर सकता है। राजा के आचरण का प्रभाव दिन रात और हर घड़ी पड़ता रहता है। राजा की बातचीत तक का बहुत कुछ फल होता है।

अतः राजा को बात बात में यह जताना चाहिए कि उसे सदाचार से प्रेम और बुराई से चिढ़ है। जब जैसा अवसर पड़े, राजा को कोई न कोई बात इस तरह की कहनी चाहिए। जैसे श्रीमान् कहें—"मैं ऐसे लोगों को बिलकुल नहीं चाहता जो झूठ बोलते हैं" वा "मुझे ऐसे कर्म्मचारियों से बड़ी चिढ़ है जो घूस लेते हैं" वा "मुझे इधर उधर की लगानेवालों से बड़ा घिन है" अथवा "कोई यह न समझे कि मैं चालबाज़ियों से बढ़ूँगा" इत्यादि। ये बातें इस ढंग से भी कही जा सकती हैं "जो सच्चे हैं मैं उनका सम्मान करता हूँ" "मैं सच्चे और ईमानदार कर्मचारियों पर बहुत प्रसन्न होता हूँ" इत्यादि।

निश्चय समझिए कि बहुत से लोग राजा की ऐसी ऐसी बातों पर बड़ा ध्यान रक्खेंगे और उन्हें दूर दूर तक फैलावेंगे। ऐसी ऐसी बातों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा। इनसे भले लोगों को उत्साह होगा और बुरे लोगों की चाल सुधरेगी। इनसे सबको चेतावनी मिलती रहेगी। इस प्रकार मैं समझता हूँ कि राजा एक बड़े प्रभावशाली उपदेशक का काम कर सकता है। उसे थोड़े ही दिनों में लोगों की सत्प्रवृत्ति बढ़ाने का यश प्राप्त हो सकता है। यह समझ रखना चाहिए कि लोगों की प्रवृत्ति जितनी ही अच्छी होगी उतना ही शासन-कार्य्य सुगम और अच्छा होगा तथा प्रजा का सुख बढ़ेगा।

संक्षेप यह है कि राजा का यह बड़ा भारी कर्तव्य है कि वह अपने अधिकार और प्रभाव का प्रयोग सदाचार को बढ़ाने और बुराई को दबाने के लिए करे। वह जो कुछ कहे, जो कुछ करे, जो पद और प्रतिष्ठा प्रदान करे सबका लक्ष्य इस बड़े उद्देश्य की ओर हो।

महल मैं अब महल के प्रबंध के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ। जिस प्रधान उद्देश से महल का सारा प्रबंध होना चाहिए वह यह है कि महाराज और उनके परिवार के लोग आराम और सुख से रहें तथा अपना आवश्यक राजसी ठाटबाट बनाए रहें।

इस काम में जो ख़र्च पड़े वह ठीक ही है और उसे उठाना चाहिए। यह ख़र्च यूरोपीय राज्यों की अपेक्षा एशिया के

राज्यों में कुछ अधिक होता है क्योंकि वहाँ और यहाँ की चालढाल, रीति व्यवहार, और आचार विचार में भेद है। भारतवर्ष के लोग बहुत काल से तड़क भड़क को शक्ति का अंग समझते आए हैं। यहाँ तक कि ठाटबाट ही देखकर लोग शक्ति का अंदाज़ करते हैं।

पर साथ ही यह भी है कि महल का ख़र्च रियासत की आमदनी के हिसाब से हो। यदि यह ख़र्च हिसाब से अधिक होगा तो क्या होगा? प्रजा के सुख की वृद्धि करने के जो साधन हैं उनमें कमी होगी, अर्थात् प्रजा के सुख का कुछ अंश न्योछावर हो जायगा। पर जहाँ तक हो सके प्रजा को सुखी करना राजा का पहला कर्तव्य है।

महल के एक एक विभाग के एक एक मद का ख़र्च बँधा वा निर्धारित हो। राजा साहब यह देखते रहें कि जिस काम के लिए जितना ख़र्च मुक़र्रर है उतना ही होता है। बड़ा भारी सिद्धांत तो यह है कि जहाँ तक हो सके बहुत कम ऐसे मद हों जिनका ख़र्च बँधा वा मुक़र्रर न हो। जो ख़र्च बिना बँधा छोड़ा जायगा वह बराबर हर साल बढ़ता ही जायगा।

पर कुछ थोड़े से मद ऐसे अवश्य होंगे जिनका ख़र्च बाँधा नहीं जा सकता। ऐसे मदों की देखभाल राजा महाराजा स्वयं करें और किसी ख़ास ख़र्च को मंजूर करने का अधिकार अपने हाथ में रक्खें।

महल का वा खानगी खज़ाना अलग होना चाहिए। जो रुपया खानगी खर्च के लिए मुकर्रर हो वह समय समय पर रियासत के बड़े खज़ाने से इसमें आया करे। इन दोनों खज़ानों को गड्डबड्ड न करना चाहिए।

महल की सारी आमदनी और खर्च महल के खज़ाने के नाम हो जिसमें इस खज़ाने की बही उठाते ही महल के सारे जमा खर्च का पता चल जाय।

रुपए पैसों के मामले में जहाँ तक हो सके, लिखकर आज्ञाएँ दी जायँ, ज़बानी हुक्मों का कुछ ठीक ठिकाना नहीं। कुछ दिनों पीछे उनमें बड़ी बड़ी कठिनाइयां और संदेह पड़ते हैं। लिपिबद्ध आज्ञा की उस समय विशेष आवश्यकता होती है जब कोई बड़ा और असाधारण खर्च आ पड़ता है।

तनखाह और देना बराबर ठीक समय पर चुकाया जाय। इससे रियासत के छोटे बड़े सब कर्म्मचारियों तथा व्यापारियों आदि को बड़ा सुबीता होगा।

महल के खज़ाने से किसी को रुपया उधार न दिया जाय। महल का खज़ाना बैंक नहीं है। इस सिद्धांत पर बड़ी दृढ़ता से स्थिर रहना चाहिए, नहीं तो बहुत बुरी और सत्यानाशी रीति चल पड़ेगी।

महल का हिसाब किताब बड़े विश्वासपात्र और योग्य कर्म्मचारी के जिम्मे रहना चाहिए। हिसाब किताब लिखने में किसी प्रकार की ढिलाई न होने पावे। जो खर्च हो वह

तुरंत टाँक लिया जाय। जहाँ तक हो सके, हिसाब में एक वर्ष के ख़र्चे के अंदर उस वर्ष का सारा ख़र्च आ जाय। यह न हो कि किसी एक वर्ष का ख़र्च दूसरे वर्ष में डाल दिया जाय। यदि इस बात का ध्यान रक्खा जायगा तभी एक वर्ष के ख़र्च का मिलान दूसरे वर्ष के ख़र्च से हो सकेगा।

हिसाब की जाँच रियासत के आडिटर वा हिसाब जाँचने-वाले द्वारा बराबर होती रहे, किसी प्रकार की रोकटोक न रहने से बड़ी गड़बड़ो होगी।

महाराज का कोई ख़ानगी ख़र्च रियासत के ख़ज़ाने से न लिया जाय और न उसके हिसाब में डाला जाय। महल का ख़र्च कम दिखाने के लिए ऐसा प्रायः किया जाता है। पर यह चाल धोखे की है और बंद होनी चाहिए।

साधारण नियम यह होना चाहिए कि किसी मद्द का ख़र्च, जब तक किसी और मद्द से बचत न हो, न बढ़ाया जाय। यदि ख़र्च एक तरफ़ बढ़ता है तो दूसरी तरफ़ घटना चाहिए। यदि इस सीधे सादे सिद्धांत का ध्यान बराबर रहेगा तो महल का औसत ख़र्च सदा बराबर रहेगा। मान लीजिए कि कोई चोबदार कुछ तनख़ाह बढ़ाने की प्रार्थना करता है। उसे आँख मूँदकर मंज़ूर न कर लेना चाहिए। चोबदार बहुत से रहते हैं। इनमें से यदि किसी की जगह ख़ाली हो तो या तो वह जगह तोड़ दी जाय या उसकी तनख़ाह घटा दी जाय। इस प्रकार जो रुपया हाथ में आवे उससे उस

चोबदार की तनख़ाह, यदि आवश्यक हो, बढ़ा दी जाय। सारांश यह कि जब किसी की तनख़ाह बढ़ानी हो तो यह देख लेना चाहिए कि हाथ में कुछ रुपया फ़ाज़िल है, यदि हो तो उसी में से तनख़ाह बढ़ाई जाय। ऐसे मामलों में महल का हिसाब किताब रखनेवाले कर्म्मचारी से राय ली जाया करे और उसे यह आज्ञा रहे कि वह आय-व्यय की अवस्था महाराज को सूचित करता रहे।

महीने महीने महल के ख़ज़ाने की बाक़ी की जाँच होनी आवश्यक है। महल के दो वा तीन बड़े अफ़सर यह जाँच खुद किया करें और यह निश्चयपत्र महाराज को दिया करें कि बाक़ी की रक़म इतनी है जो हिसाब से मिलान खाती है। ये निश्चयपत्र एक बही में टाँक लिये जायँ और वह बही बराबर रक्खी रहे।

पंडित, पुजारी, ज्योतिषी तथा इसी वर्ग के और लोग सदा ख़र्च बढ़ाने की फ़िक्र में रहा करते हैं इससे उन पर कड़ा दबाव रहना चाहिए। व्यवहार उनके साथ अच्छा हो पर वे अपनी सीमा का उल्लंघन न करने पावें।

महल की रानियाँ भी राज्य की आर्थिक अवस्था का कुछ ध्यान नहीं रखतीं और बराबर किसी न किसी ढंग से ख़र्च बढ़ाया ही चाहती हैं। उनकी इस प्रवृत्ति को रोकना चाहिए।

इन रानियों तथा और लोगों को यह अच्छी तरह निश्चय करा देना चाहिए कि वे जो ऋण करेंगी उसका देनदार महल

न होगा। पहले तो वे क़र्ज़ लें नहीं, यदि लें भी तो उसे उसी रुपए से चुकावें जो उन्हें ख़र्च के लिए मिलता है।

गोदान इत्यादि बहुत से दान हैं जो राजा महाराजों तथा उनके परिवार की ओर से दिए जाते हैं। ऐसे दानों में बहुत सी बुराइयाँ घुस गई हैं। राजा महाराजों को इनकी ओर ध्यान देना चाहिए और यह देखना चाहिए कि जो भारी भारी दान हों उनसे कोई सच्चा लाभ वा उपकार हो, विद्या की वृद्धि हो, दीनों का कष्ट दूर हो।

जवाहिरात वग़ैरह—राजा महाराजों के महल में बहुत से जवाहिरात और सोने चाँदी की चीज़ें रहती हैं जिन पर उनकी पूरी निगरानी रहनी चाहिए।

इन सबकी एक सूची महल के दफ़्तर में रहनी चाहिए। राजा महाराजों को चाहिए कि वे जाकर स्वयं एक बार देख लें कि संग्रह में क्या क्या चीज़ें हैं। उनके इस देखने का बड़ा अच्छा फल होगा।

जब महाराज ने एक बार सब देखकर सहेज लिया तब कुछ लोगों को नियत करने का प्रबंध होना चाहिए जो समय समय पर उनकी जाँच करते रहें और महाराज को निश्चयपत्र देते रहें कि सब ठीक है। जाँच करनेवाले यह भी देख लें कि बहुमूल्य पत्थर और मोती इत्यादि बराबर वही हैं, बदले नहीं गए हैं।

इन सब चीज़ों की ताली विश्वासपात्र मनुष्यों के हाथ में रहे। एक आदमी से काम न चलेगा, क्योंकि न जाने

कब वह बीमार पड़े, मर जाय। इससे अच्छा यह होगा कि कई आदमियों की एक कमेटी बना दी जाय।

पहले जवाहिरात छोटी छोटी अँधेरी कोठरियों में इधर उधर बिखरे रहते थे। प्रबंध ढीला रहता था। अब भारी भारी चीज़ें लोहे की कोठरियों के भीतर अलग अलग संदूकों में रहती हैं। यह प्रबंध अच्छा है।

ये वस्तुएँ पुरखों की संचित हैं। इन्हें अच्छी तरह रखने में मर्य्यादा है। इनमें से व्यर्थ बहुत सी चीज़ें इनाम वा भेंट में न दी जायँ। यदि कभी देना आवश्यक हो तो हलकी चीज़ें दी जायँ।

जौहरी लोग नए जवाहिरात ख़रीदने के लिए राजा महाराजों से बड़ी लंबी चौड़ी बातें करते हैं जिनसे उन्हें सावधान रहना चाहिए। वे सुंदर सुंदर नए केसों (खानों) में जड़ाऊ गहने रनिवास में दिखाते हैं और अनेक ऐसी युक्तियाँ रचते हैं कि जिससे रानियाँ उन्हें मोल लेने के लिए ज़ोर दें। कभी कभी तो वे ऐसे लोगों को घूस तक देते हैं जिनका रानियों पर कुछ ज़ोर रहता है। ऐसे फेरों में कभी न पड़ना चाहिए। ऐसी ही बातों में तो दृढ़ता दिखानी चाहिए। रानियों को समझा देना चाहिए कि इस प्रकार की चीज़ें तो महल में बहुत सी हैं अथवा महल में प्रस्तुत सामग्रियों से थोड़े दिनों में तैयार हो सकती हैं।

गाड़ी घोड़े तथा महल के और सामान अच्छे और दुरुस्त रहें। साधारण नियम यह होना चाहिए कि जिन

वस्तुओं का महाराज स्वयं व्यवहार करते हों वे बहुत अच्छे मेल की हों। क्योंकि बीस रद्दी गाड़ियों से दस अच्छी गाड़ियों का रखना अच्छा है। इसी सिद्धांत का पालन महल की और और बातों में भी करना चाहिए। जैसे कि महाराज के जो अर्दली और नौकर चाकर हों वे चुने हुए और अच्छे कपड़े पहने हुए हों।

महल में स्वास्थ्य-रक्षा की बातों का पूरा ध्यान रहना चाहिए। बहुत से नौकर चाकर एक ही बंद जगह में गंदगी से न रहने पावें।

राजा महाराजों के यहाँ बहुत सी अलभ्य और अद्भुत वस्तुएँ रहती हैं। वे इधर उधर पड़ी न रहने पावें, एक जगह ठिकाने से रख दी जायँ, जिसमें राजा महाराजों को मालूम रहे कि कौन सी चीज़ें हैं और वे उन्हें काम में ला सकें।

महल में नित्य की बातों का लेखा रखने के लिए एक दिनचर्या वा रोज़नामचे की पुस्तक रहे। इसमें जो बातें याद रखने लायक़ हों दर्ज कर ली जाया करें। ऐसी पुस्तक बड़े काम की होगी, विशेषकर नज़ीर वा दृष्टांत रखने के लिए।

महल का जो अफ़सर वा कामदार हो वह बहुत योग्य और निपुण हो। उसे महल के लिए मामूली ख़र्च करने, नौकरों को रखने, छुड़ाने आदि का पूरा अधिकार रहना चाहिए।

महल का कामदार हर एक वर्ष के अंत में महल के प्रबंध का एक विवरण वा रिपोर्ट उपस्थित किया करे। यह रिपोर्ट बड़े काम की होगी।

राज्य का मंत्रि-मंडल—राजा राज्य की शक्ति है और राज्य की सभा वह यंत्र है जिसे वह शक्ति चलाती है। इन्हीं पर प्रजा के हित का भार है।

इस सभा वा कचहरी को नीति-बल और बुद्धि-बल होना चाहिए। इस कचहरी का प्रधान अधिष्ठाता दीवान होता है अतः उसे बहुत योग्य होना चाहिए। उस पर महाराज का विश्वास होना चाहिए, प्रजा का विश्वास होना चाहिए और अँगरेज़ सरकार का विश्वास होना चाहिए। उसे शासन-कार्य्य में विशेषतः देशी राज्यों के शासन-कार्य्य में निपुणता होनी चाहिए। यह निपुणता उसे यदि उसी रियासत में काम करते करते प्राप्त हुई है तो और भी अच्छी बात है।

रियासत की कचहरी में सदा कुछ ऐसे योग्य और नीति-परायण मनुष्य रहें जो शासन-कार्य्य में दक्षता प्राप्त कर चुके हों। इन्हीं में से समय समय पर दीवान चुने जाया करें तो बहुत ही अच्छा है।

यदि इस बात का ध्यान नहीं रक्खा जायगा तो जब जब दीवान की जगह ख़ाली होगी तब तब महाराज को बड़ी कठिनता होगी। अपनी रियासत के कर्म्मचारियों में किसी को योग्य न पाकर उन्हें किसी बाहरी आदमी को बुलाना पड़ेगा जो ठीक नहीं है।

अपरिचित व्यक्ति को दीवान बनाना राजा महाराजों के सुबीते की बात नहीं है। जिससे कभी की जान पहचान

नहीं, जिसका स्वभाव और रंग ढंग मालूम नहीं, जो उस स्थान और वहाँ के लोगों को नहीं जानता, जिसे रियासत के भिन्न भिन्न स्थानों के शासनक्रम और ब्योरे से जानकारी नहीं, जिसको महाराज का इतना ज़ोर नहीं जितना बाहर के लोगों का, ऐसे आदमी को दीवान बनाना ठीक नहीं।

दीवान को अँगरेज़ी भाषा पर पूरा अधिकार होना चाहिए। इसके बिना किसी बड़ी रियासत का प्रबंध चार दिन भी नहीं चल सकता।

दीवान दृढ़ पर शांतिप्रिय हो, न्यायी पर शीलवान् हो, तत्पर पर धीर हो, उत्साही पर विचारवान् हो, मान अपमान का ध्यान रखनेवाला हो पर झगड़ालू न हो, महाराज को प्रिय हो पर समय पर साफ़ बात कहनेवाला हो। वह शासन के प्रत्येक विभाग में उन्नति का पक्षपाती हो पर साथ ही उसमें इतना विवेक हो कि जो बातें पुरानी, स्वाभाविक और उपयोगी हों उन्हें वह बनी रहने दे।

राजा महाराजों के लिए बिना भारी कारण के जल्दी जल्दी दीवान बदलना अच्छी नीति नहीं है। दीवान को यह विश्वास रहना चाहिए कि वह अपने पद पर कम से कम पाँच वर्षों तक रहेगा। किसी राजा का जल्दी जल्दी दीवान बदलना दुर्बलता का लक्षण है।

दीवान के नीचे राज्य के जो और विभाग हों उनके अधिकारी भी बहुत सोच समझकर चुने जाँय। उनमें अपना

काम करने की पूरी योग्यता हो, वे अँगरेज़ी अच्छी तरह जानते हों। वे कई जातियों और धर्मों के हों।

भिन्न भिन्न विभागों के अधिकारियों के साथ अच्छा व्यवहार होना चाहिए। अच्छे प्रबंध और शासन के लिए उनकी प्रशंसा होनी चाहिए। राजा महाराजों का कभी कभी उचित प्रशंसा कर देना सौ इनाम से बढ़कर है क्योंकि प्रतिष्ठित लोग मान के भूखे रहते हैं।

अधिकारी और मंत्री लोग राजा के नौकर ही हैं। पर उनसे कुछ कहने में चतुर राजा ऐसे शब्दों को बचाते हैं जिनसे हुकूमत टपके। उच्चाशय लोग तो छोटे छोटे नौकर चाकरों के साथ भी ऐसा ही करते हैं।

रियासत की कचहरी का काम बहुत बड़ा है। उसमें व्यवस्था और नियम की बड़ी आवश्यकता है। देशी रियासतों में व्यवस्था और नियम प्रायः ढीले पड़ जाते हैं और तोड़ दिए जाते हैं। राजा महाराजों को ऐसा न होने देना चाहिए। व्यवस्था का यह मतलब है कि सारा काम कई उचित विभागों में बाँटा जाय, एक एक कर्म्मचारी के ज़िम्मे एक एक विभाग कर दिया जाय और उस विभाग के काम को पूरा कराने के लिए उसके नीचे और कार्यकर्त्ता रक्खे जायँ। मुहर्रिर से लेकर दीवान तक किसी न किसी के अधीन हों। ऐसी व्यवस्था के अंतर्गत रियासत का सारा कारख़ाना आ जाय, उसका प्रत्येक अंग दूसरे अंग के अधीन काम करे।

नियम का मतलब यह है कि कार्य विभाग की सब श्रेणियों में एक दूसरे की अधीनता बनी रहे।

केवल यही ढंग है जिससे बहुत से मनुष्य अपनी अपनी शक्तियों को दूसरों की शक्तियों के अनुकूल रखते हुए किसी बड़े उद्देश्य की सिद्धि में लगा सकते हैं। नियम और व्यवस्था के बिना सब बातें गड़बड़ रहेंगी। लोगों पर इस बात का कोई दबाव न रहेगा कि वे सदा एक उद्देश्य पर दृष्टि रखकर काम करें। यही नहीं कि उनके काम एक दूसरे के मेल में न होंगे बल्कि एक दूसरे के विपरीत होंगे।

राजा महाराजों को रियासत के कामों में नियम और व्यवस्था का पूरा ध्यान रखना चाहिए। 'क' नाम का कर्म्मचारी जो 'ख' नामक कर्म्मचारी के अधीन है, महाराज से आकर कहता है "मैं 'ख' की आज्ञा पर काम नहीं करना चाहता, मैं या तो महाराज की या कम से कम दीवान की आज्ञा पर चलना चाहता हूँ"। ऐसा कभी न होने देना चाहिए। इसी प्रकार कोई मुहर्रिर अपने अफ़सर से छुट्टी न माँगकर सीधे महाराज के पास छुट्टी का प्रार्थनापत्र भेजता है। महाराज को ऐसा प्रार्थनापत्र लौटा देना चाहिए और प्रार्थी से कहना चाहिए कि 'तुमने नियमविरुद्ध कार्य किया है। तुम अपनी अर्ज़ी अपने अफ़सर के पास भेजो।"

देशी रियासतों में दीवान और मंत्रियों के विरुद्ध गुमनाम अर्ज़ियाँ बहुत आया करती हैं। दीवान और मंत्री

प्रतिष्ठित आदमी होते हैं इससे ऐसी अर्ज़ियों पर बहुत समझ बूझकर कार्रवाई होनी चाहिए।

साधारण नियम तो यह होना चाहिए कि जो चिट्ठियां गुमनाम वा झूठे नामों से आवें उन पर कुछ ध्यान ही न दिया जाय।

राजा साहब को चाहिए कि वे अपने दीवान और भिन्न भिन्न विभागों के मंत्रियों पर विश्वास रक्खें और उन्हें सहारा दें तथा सर्वसाधारण पर यह बात प्रकट कर दें कि हम उन पर विश्वास रखते हैं और उन्हें हर बात में सहारा देते हैं। जहाँ इसके विरुद्ध लोगों की धारणा हुई कि चट भाँति भाँति के कुचक्र चलने लगेंगे, राज्य की सारी व्यवस्था शिथिल हो जायगी और हानि पहुँचेगी।

ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि मंत्रियों में मेल रहे। उन्हें इसलिए लड़ा देना जिसमें उन्हें एक दूसरे का डर रहे अच्छी नीति नहीं है। यदि मंत्री बुरे आदमी हों तो उनकी चौकसी के लिए यह भद्दी युक्ति ठीक है। पर ऊपर अच्छे लोगों को ही मंत्री चुने जाने की व्यवस्था है। खोटे आपस में लड़ें, भले आदमी क्यों ऐसा करें।

राजाओं को तो चाहिए कि मंत्रियों में मेल बनाए रहें। जब देखें कि कुचक्री लोग उनमें फूट डालना चाहते हैं तब उन्हें रोकें।

मंत्रियों में मेल बढ़ाने और उन्हें एक साथ जवाबदेह बनाने के लिए यह प्रबंध करना चाहिए कि प्रत्येक मंत्री भारी मामले

में अपने और सहयोगियों के साथ विचार करके तब सबकी सम्मति से कोई बात स्थिर करें। इस ढंग से हर एक बड़े मामले पर पूरा पूरा विचार होगा और सब मंत्री एक दूसरे की कार्रवाई के जवाबदेह रहेंगे। तब कोई मंत्री यह न कह सकेगा कि अमुक मंत्री ने यह बुराई की है। इस प्रकार बुरी कार्रवाइयों की संभावना बहुत कम हो जायगी।

इससे एक लाभ और होगा। जब कि एक मंत्री किसी भारी मामले पर दूसरे मंत्रियों के साथ विचार किया करेगा तब हर एक मंत्री को, न कि केवल अपने ही विभाग के काम से जानकारी रहेगी बल्कि, और और विभागों के काम से भी जानकारी हो जायगी। ऐसा होने पर, यदि कभी किसी विभाग का मंत्री न रहेगा तो जो उसके स्थान पर होगा वह और मंत्रियों से अपना काम बहुत जल्दी सीख लेगा।

राज्य के भिन्न भिन्न विभाग—रियासत की कचहरी में कई विभाग रहते हैं, जैसे, माल विभाग, सेना विभाग, न्याय विभाग और इंजीनियरी विभाग आदि।

माल विभाग का अधिकारी अपने कार्य्य के सारे ब्योरे और सिद्धांत समझता हो। आमदनी के जितने द्वार हैं, जैसे चुंगी, आबकारी, ज़मीन, उसे उन सबकी जानकारी रखनी चाहिए। इन सबके विषय में उसे इतनी बातें जाननी चाहिएँ—१ प्रत्येक का पिछला वृत्तांत। २ उसकी वर्तमान अवस्था। ३ अँगरेज़ी राज्य में उसकी अवस्था। ४ उसके

ज्ञाताओं के निश्चित किए हुए सिद्धांत। उसे अर्थ-प्रबंध में निपुण होना चाहिए। पहले इस विभाग के जो अधिकारी रक्खे जाते थे उन्हें इन सब बातों का ज्ञान नहीं होता था। वे यह समझते थे कि प्रजा से जहाँ तक मालगुज़ारी ऐंठते बने ऐंठनी चाहिए। कहीं की प्रजा तो मालगुज़ारी के बोझ से दबती थी और कहीं ठीक ठीक मालगुज़ारी भी नहीं वसूल होती थी। तहसीलदार और इज़ारदार लोग मनमाने महसूल लगाया और बढ़ाया करते थे। इससे व्यापार की वृद्धि नहीं होने पाती थी।

इस विभाग से हज़ारों आदमियों को नित्य काम पड़ता है, अत: इसका प्रबंध बहुत संतोषप्रदायक होना चाहिए।

न्यायविभाग का अधिकारी बुद्धिमान् तथा कानून का अच्छा जाननेवाला हो। वह न्याय के सिद्धांतों तथा न्याय शासन के ब्योरों को अच्छी तरह समझता हो।

इंजीनियरी वा स्थापत्य विभाग भी राज्य के बड़े काम का है। इसका अधिकारी वा मंत्री भी बहुत योग्य होना चाहिए। वह अँगरेज़ी में निपुण हो तथा स्थापत्य विषय की पुस्तकें बराबर देखता रहता हो क्योंकि उसे इंजीनियर से लिखापढ़ी करनी रहती है।

तनख़्वाह—पहले यह समझा जाता था कि राज्य का हर एक काम हर एक आदमी कर सकता है। इससे रियासत के लिए कर्म्मचारी मिलना कोई कठिन बात नहीं थी।

जहाँ कुछ जगहें खाली हुईं कि कोड़ियों आदमी टूट पड़ते थे और बहुत ही कम तनख़्वाह पर नौकरी कर लेते थे।

बात यह थी कि पहले कर्म्मचारी लोग तनख़्वाह के ऊपर बहुत रुपया पैदा करते थे। उनकी आमदनी इस प्रकार की थी जिसे आजकल शिक्षित लोग बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। साफ़ बात यह है कि वे लोग घूस लेते थे। वे लोग नौकरी तनख़्वाह के लिए नहीं करते थे, प्रजा को लूटने के लिए करते थे, इसी से थोड़ी तनख़्वाह पर काम करते थे।

आजकल की अवस्था और है। उत्तम शासन अब बिना शिक्षितों के नहीं हो सकता है। अब रियासत की नौकरियों के लिए ऐसे शिक्षित पुरुषों की ज़रूरत है जिनमें काम की पूरी योग्यता हो और जो इतने खरे और ऊँचे विचार के हों कि कभी अनुचित लाभ उठाने की ओर ध्यान ही न दें। पर जो अच्छी चीज़ चाहे वह अच्छा दाम लगावे। अतः देशी रियासतों को तनख़्वाहें ज़्यादा देनी चाहिएँ।

देशी रियासतों को अपने यहाँ के कर्म्मचारियों की तनख़्वाह निश्चित करने में एक बात का और ध्यान रखना चाहिए। अँगरेज़ी राज्य में ऐसे खरे और सुशिक्षित आदमियों की बड़ी माँग है। अतः जितना वेतन उन्हें अँगरेज़ी सरकार देती है उससे कम देशी रियासतों को न देना चाहिए।

अँगरेज़ी सरकार की नौकरी में पेंशन मिलती है। देशी रियासतों में नहीं। इस विचार से भी तनख़्वाह अधिक होनी चाहिए।

अँगरेज़ी सरकार की नौकरी बड़ी पक्की होती है। जब तक कर्म्मचारी कोई भारी कुचाल न करे तब तक उसे किसी प्रकार का खटका नहीं, उसकी नौकरी बराबर बनी रहेगी। पर देशी रियासतों का ढंग कुछ और ही है। वहाँ नौकरी का कुछ ठिकाना नहीं। अच्छे से अच्छा काम करनेवाला कर्म्मचारी भी यह नहीं कह सकता कि वह बराबर रियासत में बना रहेगा। प्राय: यह देखा गया है कि जितना ही जो कर्म्मचारी योग्य और अच्छा काम करनेवाला होता है उतना ही महाराज उसे कम पसंद करते हैं क्योंकि अपने उच्च सिद्धांतों के कारण वह झूठ मूठ इधर उधर की ख़ुशामद तथा और और गंदे काम नहीं कर सकता। देशी रियासतों की यही सब बातें देखकर अच्छे और योग्य आदमी अँगरेज़ी राज्य की अपेक्षा वहाँ अधिक तनख़्वाह चाहते हैं।

अब हम यहाँ थोड़े में उस रीति की हानि और लाभ पर विचार करेंगे जिसके अनुसार देशी रियासतों में अँगरेज़ी सर-कार के कर्म्मचारी बुलाए जाते हैं।

पहली बात तो यह है कि रियासत को ऐसे कर्म्मचारियों को उससे अधिक तनख़्वाह देनी पड़ती है जितनी वे सरकारी नौकरी में पाते हैं। उसके अतिरिक्त उनकी पेंशन की रक़म भी रियासत को भरनी पड़ती है।

वे जब होगा तब रियासत की नौकरी छोड़कर अपनी सरकारी जगह पर वापस चले जायँगे।

यदि उनमें से कोई कुचाल करेगा और छुड़ा दिया जायगा तो रियासत को इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि उसके छुड़ाए जाने का कारण ऐसा प्रबल हो जिससे अँगरेज़ी सरकार को संतोष हो जाय।

ऐसे लोग राजनीति में प्राय: कच्चे होते हैं क्योंकि अँगरेज़ सरकार के यहाँ वे बहुत छोटी जगहों पर रहते हैं। वे नीचे से ऊपर तक सरकारी राज्य के सारे ढाँचे को नहीं समझे रहते।

दूसरी ओर जो देखते हैं तो अँगरेज़ी सरकार ने अपने यहाँ से कर्म्मचारी देने का जो सुबीता देशी रियासतों के लिए कर दिया है उससे लाभ भी कई दिखाई पड़ते हैं। देशी रियासतों को कर्म्मचारी चुनने के लिए बहुत मैदान मिल जाता है। इसके सिवा उन्हें ऐसे सीखे सिखाए कर्म्मचारी मिल जाते हैं जो स्थानिक संबंध वा ईर्षा द्वेष से रहित होते हैं। ऐसे कर्मचारियों से रियासतों को बहुत लाभ पहुँच जाता है।

यहाँ दो एक बातों की चेतावनी भी आवश्यक है। राज्य के सब कार्य्यविभागों को बुराई से बचाए रखना पहला कर्तव्य है अत: देशी रियासतों को किसी ऐसे आदमी को अपने यहाँ न लेना चाहिए जो किसी भारी अपराध के कारण सरकारी नौकरी से अलग किया गया हो। ऐसे लोग बहुत कम तनख़्वाह पर काम करने के लिए मुस्तैद होंगे। वे राजा महाराजों पर कई तरह का ज़ोर डालेंगे। कभी वे कहेंगे कि

'हम कुछ तनख़्वाह नहीं चाहते; केवल महाराज के साथ रह-कर कुछ इस तरह के काम यों ही किया चाहते हैं, जैसे इधर उधर की बातों की ख़बर देना, मामलों में राय देना, अख़बारों में लिखना इत्यादि।' पर ऐसे लोगों को एकदम फटकार देना चाहिए।

ऐसे सरकारी नौकरों को रखना भी ठीक नहीं जो पेंशन पा चुके हों। जो सरकारी काम के लिए असमर्थ हैं वे देशी रियासतों का काम कैसे अच्छा करेंगे। हाँ, यदि कोई बड़ा अनुभवी और योग्य मनुष्य हो, और उसमें कार्य्य करने की पूरी शक्ति हो, तो उसे ले लेना चाहिए।

पहले रियासत के नौकरों को तनख़्वाह, ज़मीन, पालकी ख़र्च, इनाम इत्यादि कई तरह की रक़में दी जाती थीं। इससे बहुत सी धोखेबाजी और गड़बड़ी होती थी। अब नौकरों की केवल नक़द तनख़्वाह बँधनी चाहिए।

रियासत की नौकरियाँ—जब कि भिन्न भिन्न विभागों के अधिकारी योग्य चुने गए हैं तब उन्हें लोगों को मुक़र्रर करने और तरक़्क़ी देने आदि का पूरा अधिकार देना चाहिए। जुरमाना करके मुअत्तल करने और बरख़ास्त करने का अधिकार भी उन्हीं के हाथ में रहना चाहिए। बिना इस अधिकार के वे सुंदर प्रबंध और व्यवस्था नहीं रख सकते। इसका यह अभिप्राय नहीं कि वे अपने इस अधिकार का मनमाना प्रयोग करें।

किसी विभाग का अधिकारी ही यह ठीक ठीक जान सकता है कि उस विभाग की किसी जगह के लिए कैसी योग्यता चाहिए और किसी उम्मेदवार में वह योग्यता है वा नहीं। वही ठीक ठीक विचार सकता है कि उसके मातहतों में से किसे तरक्की मिलनी चाहिए। अतः नौकरी आदि देने के विषय में उसी की राय पक्की माननी चाहिए।

मूर्ख और स्वार्थी लोग राजाओं को सुझाते हैं कि नौकरी आदि देने का सारा अधिकार महाराज ही अपने हाथ में रक्खें, अधिकारियों पर न छोड़ें। चतुर राजा ऐसी सलाह को नियम और व्यवस्था के विरुद्ध समझ कभी नहीं मानते।

जब कि प्रधान उद्देश्य अत्यंत योग्य मनुष्यों ही को रखना और तरक्की देना है तब इस उद्देश्य के विरुद्ध जो सिफ़ारिशें पहुँचें उन पर कुछ ध्यान न देना चाहिए, चाहे वे कहीं से आवें। ऐसी सिफ़ारिशें मित्रों वा संबंधियों के यहाँ से आ सकती हैं, सरकारी अफ़सरों के यहाँ से आ सकती हैं, पर राजा को अपने उद्देश्य पर दृढ़ रहना चाहिए।

रियासत के काम के कई विभाग वा मुहकमे होते हैं। प्रत्येक विभाग के लिए एक विशेष प्रकार की योग्यता चाहिए। अतः यह बात नहीं है कि जो आदमी एक विभाग के लिए उपयुक्त है वह अवश्य दूसरे के लिए भी उपयुक्त है। अतः कर्म्मचारियों की बदली एक विभाग से दूसरे विभाग में बिना समझे बूझे न कर देनी चाहिए। जैसे किसी

माल के मुहकमे के अफ़सर को न्याय विभाग में चटपट न बदल देना चाहिए।

राजा महाराजा मुक़र्ररी वा तरक़्क़ी के लिए किसी प्रकार का नज़राना न लें। वे अपने किसी कर्म्मचारी को मुक़र्ररी वा तरक़्क़ी के लिए किसी से घूस न लेने दें। उत्तम राज्य-शासन के लिए यह बड़ा भारी विष है, इससे बचना चाहिए। जो कर्म्मचारी इस सिद्धांत के विरुद्ध कोई कार्रवाई करे वह निकाल बाहर कर दिया जाय और यदि आवश्यक हो तो फ़ौजदारी सुपुर्द किया जाय।

अच्छे अच्छे पदों पर रक्खे जाने के लिए लोग और कई तरह की चालें चलते हैं। जैसे कोई महाराज से आ-कर कहता है, "यह जगह मुझे मिल जाय तो मैं मालगुज़ारी चौगुनी कर दूँ"। यदि महाराज रुपए के भक्त हुए तो बात में आ गए। फल क्या हुआ कि प्रजा को पीड़ा पहुँचने लगी। आय बढ़ाने का उत्तम उपाय यह नहीं है। आय वही ठीक है जो सुराज्य के कारण हो, प्रजा के धन-धान्य की वृद्धि के कारण हो, न कि गला दबाने से।

अँगरेजी सरकार का संबंध—यह तो प्रत्यक्ष है कि हिमालय से कन्याकुमारी तक और रंगून से पेशावर तक अँगरेज़ी सरकार ही का एकाधिपत्य है। इस आधिपत्य के अंतर्गत अँगरेज़ी अमलदारी भी है तथा वे प्रदेश भी हैं जिनमें देशी रजवाड़े राज्य करते हैं। अँगरेज़ी सरकार ही इस इतने बड़े भूखंड पर शांति रखती है।

इस बड़े कार्य्य को अँगरेज़ी सरकार ऐसी शक्ति के साथ करती है जो अनिवार्य्य है। यह ऐसी शक्ति है जो विरोध करनेवालों को बात की बात में ध्वंस कर सकती है।

अँगरेज़ी सरकार की यह शक्ति इस कारण और भी अनिवार्य्य है कि उसमें बाहुबल, बुद्धिबल और नीतिबल तीनों का संयोग है। इसी सुख-संयोग के कारण अँगरेज़ी राज्य अपने से पहले के राज्यों की अपेक्षा अधिक शक्तिसम्पन्न और स्थिर हैं।

इससे सिद्ध है कि प्रत्येक देशी रजवाड़े को उस अँगरेज़ी सरकार से मिलकर चलना चाहिए जिसकी इतनी अनिवार्य्य शक्ति है। जो देशी राजा उसे कुपित करे उसकी बड़ी भारी मूर्खता है। अँगरेज़ी सरकार को प्रसन्न रखना राजा महाराजों के लिए अत्यंत ही आवश्यक है। इस आवश्यकता को वे जहाँ तक समझें वहाँ तक उनके लिए अच्छा ही है।

आनंद की बात यह है कि अँगरेज़ी सरकार के गुण और व्यवहार ऐसे हैं कि उसे प्रसन्न रखने में कोई बड़ा ख़र्च वा कठिनता नहीं है। जिस प्रकार अँगरेज़ सरकार का बाहुबल अदमनीय है उसी प्रकार बुद्धि, नीति और न्याय का बल भी अदमनीय है। वह अनीति, अन्याय और नासमझी की बातों से सदा बचती है। यदि उसे यह अच्छी तरह दिखला दिया जाय कि यह काम अनीति और अन्याय का है तो वह उससे किनारे हो जायगी। यह अँगरेज़ी सरकार में बड़ा भारी

गुण है। इसी गुण को देख देशी रियासतों को भरोसा है कि वे सुख और मान मर्य्यादा के साथ बराबर बनी रहेंगी।

इन सब बातों का विचार कर देशी रजवाड़ों को चलना चाहिए। उन्हें उन लोगों से कुछ भी संबंध न रखना चाहिए जो अँगरेज़ सरकार के विरुद्ध हों। उन्हें ऐसे राजनैतिक आंदोलनों में सहायता न देनी चाहिए जो अँगरेज़ी सरकार के सरासर विरुद्ध हों।

आजकल देशी रजवाड़ों के लिए अँगरेज़ी सरकार को प्रसन्न रखने की सबसे अच्छी युक्ति यही है कि वे अपने राज्य का शासन अच्छा करें और इसका ध्यान रक्खें कि उनका प्रबंध ऐसा न हो जिससे अँगरेज़ी सरकार के प्रबंध में किसी प्रकार की बाधा पड़े।

यदि अँगरेज़ी सरकार से किसी बात में मतभेद हो तो राजों को अपने पक्ष की युक्तियों को उसके सामने उपस्थित करना चाहिए। अपने स्वत्व, मान और अधिकार की रक्षा के लिए उन्हें अँगरेज़ी सरकार के न्याय और नीति की दुहाई देनी चाहिए। अतः राजा महाराजों तथा उनके दीवानों को उसके न्याय और नीति के मुख्य मुख्य सिद्धांतों को जान लेना चाहिए। इनमें से कुछ थोड़े से यहाँ बतलाए जाते हैं।

पहले हम महारानी विक्टोरिया के १८५८ वाले घोषणा-पत्र को लेते हैं। उसका एक पैरा इस प्रकार है—"हम अपने वर्तमान राज्य को और बढ़ाना नहीं चाहतीं और जिस प्रकार

हम अपना राज्य किसी को दबाने और अपना हक़ किसी को मारने न देंगी उसी प्रकार दूसरों के राज्यों पर किसी प्रकार के अतिक्रमण की अनुमति न देगी।"

ऊपर के वाक्यों से एक बड़ा सिद्धांत तो यह निकलता है कि अँगरेज़ सरकार ने दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि हम किसी देशी रियासत की कोई ज़मीन न लेंगे। किसी कारण वा किसी बहाने से अँगरेज़ी सरकार किसी देशी रियासत की कोई ज़मीन न लेगी। इस प्रकार देशी राज्यों का एक बड़ा भारी खटका तो छूट गया। उन्हें इस बात का निश्चय दिलाया गया है कि उनका राज्य बराबर बना रहेगा। इस निश्चय प्रदान के लिए देशी रजवाड़ों को अँगरेज़ी सरकार का अनुगृहीत होना चाहिए।

पर इस निश्चय दिलाने का यह मतलब नहीं कि अँगरेज़ी सरकार किसी राजा को कभी गद्दी से उतारे ही गी नहीं, यदि कोई राजा घोर कुप्रबंध का अपराधी होगा तो अँगरेज़ी सरकार उसे गद्दी से उतार देगी। इसी प्रकार यदि कोई राजा अँगरेज़ी सरकार से विद्रोह वा शत्रुता करेगा अथवा उसके शत्रुओं से मिलेगा तो भी वह उतार दिया जायगा। पर ऐसी दशा में भी अँगरेज़ी सरकार उस गद्दी पर से उतारे हुए राजा का राज्य अपने राज्य में मिला न लेगी, राजा चाहे उतार दिया जाय पर वह राज्य बना रहेगा। उस राज्य की गद्दी पर कोई दूसरा पुरुष, भर सक उतारे हुए राजा का कोई उत्तराधिकारी वा संबंधी, बिठा दिया जायगा।

महारानी के घोषणापत्र का यह पैरा भी ध्यान देने योग्य है—"हम देशी रजवाड़ों के स्वत्व और मान-मर्य्यादा का वैसा ही ध्यान रक्खेंगी जैसा अपने स्वत्व और मान-मर्य्यादा का। और हमारी इच्छा है कि वे तथा हमारी प्रजा उस सुख-समृद्धि का भोग करें जो भीतरी शांति और सुराज्य से प्राप्त होती है।"

इस संबंध में एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि देशी रजवाड़े कोई ऐसा अधिकार वा ऐसी प्रतिष्ठा न चाहें जो अति वा विलक्षण हो वा जो सभ्य समाज वा सभ्य राज्य के प्रतिकूल हो, जैसे किसी राजा का यह अधिकार चाहना ठीक नहीं है कि वह जिस स्त्री को चाहे ज़बरदस्ती अपने महल में रख ले, जिसे चाहे उसे अकारण क़ैद कर दे। किसी राजा का यह अधिकार माँगना ठीक नहीं है कि वह जहाँ कहीं जाय उसके सामने कोई चारपाई पर बैठा न रहने पावे, कोई छाता लगा-कर न चलने पावे। इसी प्रकार कोई राजा यह अधिकार नहीं माग सकता कि हम ऊपर गद्दी पर बैठा करें और सर-कारी रेज़िडेंट बिना कुरसी के नीचे फ़र्श पर बैठा करे। किसी देशी रियासत के साथ जो संधियां हुई हैं उनके विरुद्ध कोई अधिकार माँगना भी ठीक नहीं है।

महारानी के इन शब्दों से कि "हम देशी रजवाड़ों के स्वत्व और मान का वैसा ही ध्यान रक्खेंगी जैसा अपने स्वत्व और मान का" यह न समझना चाहिए कि महारानी ने देशी रजवाड़ों को अपनी बराबरी का बनाया है। यह बराबरी

कभी हो नहीं सकती। अँगरेज़ी सरकार संसार की एक बड़ी भारी शक्ति है। महारानी का अभिप्राय केवल यही है कि वे देशी रजवाड़ों का जो जैसा अधिकार वा जो जैसी प्रतिष्ठा है उसका वैसा ही ध्यान रक्खेंगी जैसा अपने अधिकार और प्रतिष्ठा का।

महारानी ने अपने घोषणापत्र में यह भी कहा है कि देशी रजवाड़ों के साथ जो जो संधियाँ हुई हैं उनका यथोचित पालन किया जायगा, और यह आशा प्रकट की है कि देशी रजवाड़े भी उनका यथोचित पालन करेंगे।

महारानी ने अपना घोषणापत्र समाप्त करते हुए जो संकल्प प्रकट किया है वह प्रत्येक छोटे बड़े शासक के ध्यान देने योग्य है। महारानी ने कहा है—"यह हमारी प्रबल इच्छा है कि भारतवर्ष के उद्योग व्यवसाय की वृद्धि करें, सर्वसाधारण के लाभ और उन्नति के काम बढ़ावें और अपनी सारी प्रजाओं की भलाई के लिए राज्य करें। उनकी बढ़ती से हमारा बल है, उनके संतोष से हमारी रक्षा है, और उनका धन्यवाद ही हमारा सबसे बड़ा इनाम है।" इसी प्रकार प्रत्येक राजा को अपनी सारी प्रजा के लाभ के लिए राज्य करना चाहिए, न कि केवल अपने और अपने थोड़े से मित्रों और आश्रितों के भोग विलास और सुख के लिए।

अँगरेज़ी सरकार यह अपना कर्त्तव्य समझती है कि वह एक रियासत को दूसरी रियासत की ज़मीन दबाने वा उस पर

ज़ोर ज़ुल्म न करने दे। इसी कर्त्तव्य के विचार से अँगरेज़ी सरकार यह भी देखती है कि कोई रियासत ऐसा काम न करे जिससे दूसरी रियासत उसकी ज़मीन दबाने वा उस पर ज़ोर ज़ुल्म करने के लिए तैयार हो। यही कारण है कि जिससे अँगरेज़ी सरकार प्रत्येक रियासत से कहती है कि किसी दूसरी रियासत के साथ सीधे पत्र व्यवहार न करो। दो रियासतों के बीच जो लिखा पढ़ी हो वह अँगरेज़ी सरकार के अफ़सरों द्वारा हो।

अँगरेज़ी सरकार प्रत्येक देशी रियासत से कहती है कि यदि तुम्हारे और किसी दूसरी रियासत के बीच कोई झगड़ा हो तो उसे हमसे कहो। इसका भार अँगरेज़ी सरकार के ऊपर है कि वह ऐसे झगड़ों का ठीक ठीक निपटेरा करे।

अँगरेज़ी सरकार ने देशी रियासतों को रूस, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका आदि दूसरी शक्तियों के ज़ोर ज़ुल्म से बचाने का भार भी अपने ऊपर लिया है। इसी लिए वह इस बात को भी देखती रहती है कि कहीं कोई देशी रियासत इन शक्तियों में से किसी को चिढ़ा न दे जिससे वह ज़ोर ज़ुल्म करने पर उतारू हों। इसी लिए वह कहती है कि देशी रियासतें दूसरी शक्तियों के साथ पत्र-व्यवहार न रक्खें। इसी लिए यदि किसी दूसरी शक्ति को किसी देशी रियासत से किसी प्रकार की हानि पहुँच जाय तो अँगरेज़ी सरकार तुरंत उस देशी रियासत से उस हानि को भरवा देगी। जैसे यदि कोई

देशी रियासत किसी दूसरी शक्ति की प्रजा को झूठ मूठ क़ैद करेगी, उसकी धन-संपत्ति छीनेगी तो वह शक्ति उस रियासत से हरजाना माँग सकती है।

अँगरेज़ी सरकार ने देशी रियासतों को उनकी प्रजा के ज़ोर ज़ुल्म से बचाने का भार भी अपने ऊपर लिया है; इसी से वह यह भी देखती रहती है कि कोई रियासत कुनीति करके अपनी प्रजा को बिगड़ने न दे।

अँगरेज़ी सरकार के एक उच्च अधिकारी ने इस विषय पर साफ़ कहा है ' देशी रजवाड़ों को भीतरी उपद्रव वा बलवे से बचाने का यदि भार लिया गया है तो साथ ही उन कार्रवाइयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार भी हाथ में रक्खा गया है जिनसे उपद्रव वा बलवा खड़ा होता है। इस हस्तक्षेप की आवश्यकता इस कारण और अधिक पड़ती है कि प्रायः सब रियासतों में एक व्यक्तिगत शासन है जिससे शासन का भला वा बुरा होना राजा ही के गुण और आचरण पर रहता है।"

लार्ड नार्थब्रुक ने बड़ौदे के महाराज मल्हारराव गायकवाड़ के पास २५ जूलाई १८७४ को जो ख़रीता भेजा था उसमें उन्होंने साफ़ लिखा था—"मेरे मित्र! मैं अँगरेज़ी फ़ौज किसी बुराई करते हुए आदमी को बचाने के लिए नहीं भेज सकता। किसी राज्य की कुनीति को यदि ब्रिटिश शक्ति सहारा देगी तो वह भी उस कुनीति के दोष की भागी होगी। इसलिए अँगरेज़ी सरकार यह देखना अपना अधिकार क्या

कर्त्तव्य समझती है कि किसी राज्य का बिगड़ा हुआ प्रबंध सुधर जाय और उसकी बुराइयाँ दूर हो जायँ। यदि ये बातें न पूरी होंगी, यदि घोर कुव्यवस्था बनी रहेगी, यदि बड़ौदे की प्रजा के साथ उचित न्याय न होगा, यदि धन और प्राण की रक्षा न होगी, यदि प्रजा और देश के हित पर इसी तरह बरा-बर ध्यान न दिया जायगा तो अँगरेज़ी सरकार अवश्य बीच में पड़ेगी और इन बुराइयों को दूर करने और सुराज्य स्थापित करने के जो उपाय उसे उचित समझ पड़ेंगे वह करेगी। राज्य का नाश करनेवाली इन बुराइयों को दूर करने के लिए यदि अँगरेज़ी सरकार बीच में पड़ी तो यह समझना चाहिए कि उसने गायकवाड़ के साथ भी मित्रता का काम किया और उनकी प्रजा के प्रति भी अपने कर्त्तव्य का पालन किया।"

यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए जब तक कोई कारण न मिलेगा, अँगरेज़ी सरकार देशी रियासतों के प्रबंध में कभी दख़ल न देगी।

यदि किसी दूसरे राजा से मिलना हो तो बड़ी शिष्टता और सभ्यता के साथ मिलना चाहिए जिसमें उसे अँगरेज़ी सरकार से इस विषय में किसी प्रकार की शिकायत करने का अवसर न मिले।

यदि किसी दूसरी रियासत का कोई असामी वा अपराधी रियासत में आ जाय तो अपने यहाँ की पुलिस द्वारा उसे पक-ड़ाने का पूरा बंदोबस्त करना चाहिए।

फ़ौजदारी और दीवानी के मामलों में तथा बनिज व्यापार के संबंध में दूसरी रियासत की प्रजा के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा अपनी प्रजा के साथ। उनमें कोई भेद भाव न रखना चाहिए।

जहाँ तक हो सके, सरहदी झगड़े न उठने पावें। और यदि कभी इस तरह का कोई झगड़ा उठ भी खड़ा हो तो शांति भंग कभी न होने दे। झगड़े की जाँच और निपटेरे के लिए अँगरेज़ी सरकार को लिखे।

जहाँ लट्ठे गाड़कर सरहद बाँधी गई है वहाँ उन लट्ठों की पूरी रक्षा करनी चाहिए।

यदि किसी दूसरे राजा की कुछ निज की ज़मीन रियासत में हो तो असामियों से लगान इत्यादि वसूल करने में उसे पूरी सहायता पहुँचानी चाहिए।

ऐसी सड़कों वा पुल आदि के बनवाने में जिनसे दोनों रियासतों को लाभ है पूरा योग देना चाहिए।

दूसरे राजाओं के स्वत्व और मान मर्य्यादा का वैसा ही ध्यान रखना चाहिए जैसा अपने स्वत्व और मान मर्यादा का।

इँगलैंड, फ्रांस, जरमनी, रूस, अमेरिका आदि बहुत से साम्राज्यों के लोग घूमते घामते देशी रियासतों में आ जाते हैं जिनमें से अधिकांश यूरोपियन होते हैं। यह समझ रखना चाहिए कि यूरोपियन कैसा ही हो जहाँ कहीं रहेगा उसकी गवर्नमेण्ट उसकी रक्षा करेगी। वह उस पर किसी प्रकार का

अन्याय वा अत्याचार न होने देगी। इससे देशी रियासतों को अपने राज्य में आए यूरोपियनों का बड़ा ध्यान रखना चाहिए। जहां तक हो सके, राजा महाराजों को यूरोपियनों के साथ ज़्यादा रगड़ा न करना चाहिए। यदि कोई यूरोपियन राजा महाराजों से मिलना चाहे तो उन्हें उससे तभी मिलना चाहिए जब वह कोई ठीक परिचय-पत्र उपस्थित करे, अन्यथा उसे रेज़िडेंट के पास भेज देना चाहिए। यदि कोई यूरोपियन परिचय-पत्र के साथ आवे तो उसका पूरा सम्मान करना चाहिए।

देशियों की प्रकृति और रीति भांति न जानने के कारण प्राय: यूरोपियन लोग देशी रियासतों में आकर भूल चूक करते हैं। इसके लिए उनसे बुरा न मानना चाहिए। जैसे कभी कोई यूरोपियन किसी मंदिर में घुस जाय, किसी पवित्र स्थान पर शिकार करे वा मछली मारे तो उसे दंड देने का प्रयत्न न करना चाहिए, धीरे से समझा देना चाहिए। यदि समझाने से न माने तो रेज़िडेंट को सूचना देनी चाहिए।

इस बात का बंदोबस्त रहे कि कोई यूरोपियन देशी रियासत में लूटा न जाय। यदि किसी यूरोपियन के साथ कोई बुराई की गई हो तो अपराधियों को उचित दंड देना चाहिए। इसमें ढिलाई करने से रियासत की बदनामी हो जायगी।

यदि कोई यूरोपियन अफ़सर रियासत में कोई छोटा मोटा अपराध करे, किसी को मारे पीटे, रियासत के अधिकारियों का अपमान करे तो मामले की ठीक ठीक इत्तला रेज़िडेंट को

देनी चाहिए, वह उचित कार्रवाई करेगा। या तो वह अफ़-सर बदल दिया जायगा, या मुअत्तल कर दिया जायगा अथवा और कोई दंड पावेगा।

संभव है कि कभी अँगरेज़ी सरकार से शत्रुता रखनेवाले यूरोपियन देशों के भेजे हुए गुप्तचर अँगरेज़ी सरकार के प्रति विद्वेष फैलाने के लिए रियासत में आ जायँ। ऐसे गुप्तचरों से बहुत चौकस रहना होगा। उनके विषय में जो जो बातें मालूम हों, सबकी ख़बर सरकारी रेज़िडेंट को पहुँचानी होगी।

देशी रियासतों को चाहिए कि वे प्रजा के धर्म वा मत में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें क्योंकि धर्मभाव बहुत प्रबल होता है।

किसी बहुत दिनों से चली आती हुई रीति को एकबारगी न बदल देना चाहिए। जिस अधिकार को बहुत से लोग बहुत दिनों से भोगते आ रहे हों उससे उन्हें एकबारगी न वंचित कर देना चाहिए।

सारांश यह कि कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे बहुत से लोगों में घोर असंतोष फैले।

अँगरेज़ी सरकार के शत्रु और मित्र देशी रियासतों के भी शत्रु और मित्र हैं। यदि अँगरेज़ी सरकार से किसी दूसरी शक्ति से लड़ाई हो रही है तो कोई देशी रियासत उस शक्ति के साथ मित्रता का व्यवहार नहीं रख सकती। इसी प्रकार यदि कोई आदमी अँगरेज़ी सरकार के विरुद्ध कार्रवाई करता

हो, उसके विरुद्ध किसी राजनैतिक आन्दोलन में सम्मिलित होता हो तो देशी रियासतों को ऐसे आदमी को किसी प्रकार का आश्रय न देना चाहिए।

इसी प्रकार यदि कोई आदमी किसी देशी रियासत के विरुद्ध कोई कार्रवाई करता होगा, वहाँ उपद्रव खड़ा करना चाहता होगा तो अँगरेज़ी सरकार ऐसे आदमी को किसी प्रकार का आश्रय न देगी, जहाँ तक होगा उसे दबावेगी।

अँगरेज़ी सरकार के साथ जो संधियाँ हुई हैं उनके अनुसार अब वे लड़ाइयाँ सब दिन के लिए दूर हो गईं जो देशी रियासतों के बीच हुआ करती थीं और जिनसे सारा देश दुखी था।

संधि के अनुसार प्रत्येक देशी रियासत को चाहिए कि अँगरेज़ी सरकार जो कुछ उसके भले के लिए सलाह दे उसे मान ले।

यहाँ पर यह समझ लेना भी आवश्यक है कि कौन सलाह अँगरेज़ी सरकार की समझनी चाहिए और कौन सलाह उसके मातहत अधिकारियों की। संधि के अनुसार जो सलाह वाइसराय वा बड़े लाट देंगे वही अँगरेज़ी सरकार की सलाह समझी जायगी और उसी को मानने को देशी रियासतें बद्ध हैं।

मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि कमिश्नर, कलक्टर आदि मातहत अँगरेज़ अधिकारियों की राय मानी ही न जाय। ऐसी राय कभी कभी बड़े काम की होती है। कहने का

प्रयोजन यह है कि उनकी राय न मानने से देशी रियासतों पर संधि-भंग का दोष नहीं लग सकता। बात भी ठीक है। यदि देशी रजवाड़ों के लिए प्रत्येक श्रेणी के अफ़सरों की राय का मानना आवश्यक हो तब तो वे कुछ कर ही न सकेंगे।

भारत सरकार जो सलाह देगी वह या तो पत्र द्वारा सीधे महाराज के पास भेजेगी अथवा रेज़िडेंट के मारफ़त। यदि रेज़िडेंट के मारफ़त भारत सरकार सलाह देगी तो रेज़िडेंट कह देगा कि मैं यह सलाह भारत सरकार के आज्ञानुसार देता हूँ। यदि भारत सरकार को अपनी सलाह पर ज़ोर देना होगा तो वह कभी कभी इस बात का आभास भी दे देगी कि यह सलाह संधिपत्र के अनुसार दी जा रही है।

यह तो प्रत्यक्ष है कि संधि के अनुसार भारत सरकार जो सलाह देगी वह रियासत के भले के लिए होगी। अतः कोई ऐसी सलाह न दी जायगी जिससे रियासत की कुछ हानि हो या जो रियासत की मान-मर्यादा के विरुद्ध हो; जैसे किसी राजा या महाराजा को यह सलाह न दी जायगी कि वे अपनी कुछ ज़मीन छोड़ दें या दीवानी वा फ़ौजदारी का इख़्तियार अपने हाथ में न रक्खें, इत्यादि।

यह हो सकता है कि भारत सरकार जिस सलाह से राज्य की भलाई समझती हो उससे महाराज कुछ भलाई न समझते हों। ऐसी दशा में महाराज को अपनी राय सरकार को अच्छी तरह समझानी चाहिए। अँगरेज़ी सरकार में

यही तो बड़ा भारी गुण है कि यदि उसे कोई बात युक्ति के साथ समझा दी जाय तो वह उसे मान लेती है।

तर्क वितर्क के उपरांत जो सम्मति सरकार स्थिर करे उसे संधि के अनुसार मान लेना चाहिए। हाँ, यदि कभी कोई ऐसा ही भारी मामला आ पड़े तो वह भारत सेक्रेटरी के पास भी विचार के लिए भेजा जा सकता है।

यह बात भी अच्छी तरह समझ रखनी चाहिए कि अँगरेज़ी सरकार जब आवश्यकता देखेगी तभी इस प्रकार की सलाह देगी। यह आवश्यकता उस समय होगी जब कोई रियासत जान बूझकर वा अनजान में ऐसी बात की ओर ध्यान न देगी जिससे उसकी भलाई है। पर जब कोई रियासत अपना काम बुद्धि और विवेक के साथ कर रही है तब उसके साथ किसी प्रकार की छेड़छाड़ न की जायगी। भारत सरकार बराबर यही चाहती है कि देशी रियासतें जो उन्नति करें आप से आप करें, बाहरी दबाव के कारण नहीं, पर यदि कोई रियासत सरासर भूल करेगी तो अँगरेज़ी सरकार का यह कर्तव्य होगा कि वह संधि के अनुसार दख़ल दे।

अँगरेज़ी सरकार देशी राज्यों के लिए इतने उच्च शासन का आदर्श न रक्खेगी जिसका वे निर्वाह न कर सकें। इसी प्रकार वह इस बात का भी दबाव न डालेगी कि देशी राज्य एकदम से अँगरेज़ी राज्य प्रणाली की नक़ल करें। अँगरेज़ी नमूने पर कहाँ तक चलना उचित होगा यह प्रत्येक रियासत आप देख लेगी।

अँगरेज़ी सरकार इस प्रकार की सलाह जब कोई भारी मामला होगा तभी देगी थोड़ी थोड़ी बातों में नहीं, जिससे रियासत के हाथ पाँव बँध जायँ। संधि के अनुसार अँगरेज़ी सरकार जो सलाह देगी वह प्रसंग के अनुसार जहाँ तक होगा बड़े सुहृद् और कोमल भाव से देगी। भर मक इस बात का ध्यान रक्खा जायगा कि ऐसी सलाह कठोर शब्दों में न हो और उससे देशी राजा के अधिकार में बट्टा न लगे।

अँगरेज़ी सरकार की प्रवृत्ति के विषय में एक बड़ा भारी सिद्धांत जान रखना चाहिए। जहाँ (देशी) राजा और उसकी प्रजा दोनों को साथ ही संतुष्ट करना संभव होगा वहाँ तो अँगरेज़ी सरकार दोनों के लाभ का ध्यान रक्खेगी पर जहाँ दोनों के लाभों में परस्पर विरोध होगा वहाँ अँगरेज़ी सरकार प्रजा ही का लाभ देखेगी।

आदर सम्मान—सरकारी रेज़िडेंटों और राजा महा-राजों के बीच पूरा मेल रहना चाहिए। इसके लिए दोनों ओर से प्रयत्न होना चाहिए। राजा महाराजों को रीति के अनुसार रेज़िडेंट का उचित सम्मान करना चाहिए। इस विषय में जो दस्तूर चला आता हो उसका बराबर ध्यान रखना चाहिए। जैसे, रेज़िडेंट यदि मिलने आवें तो उन्हें कहाँ जाकर लेना चाहिए, किस प्रकार बैठाना चाहिए, इन सब बातों का पूरा विचार रक्खा जाय। सारांश यह कि रेज़िडेंट को हर तरह से निश्चय रहे कि महाराज उनके उचित सम्मान का

बराबर ध्यान रखते हैं। रेज़िडेंट के मन में यह विचार कभी न हो कि यदि अवसर पावेंगे तो महाराज उनके सम्मान में कुछ कसर करेंगे। एक उदाहरण से अभिप्राय स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए कि यह दस्तूर चला आता है कि किसी विशेष अवसर पर रेज़िडेंट महाराज के दाहने बैठें। यदि भूल से या यों ही रेज़िडेंट साहब महाराज के बायें बैठ गए तो महाराज को यह न चाहिए कि वे चुपचाप रह जायँ बल्कि उन्हें तुरंत रेज़िडेंट साहब को अपने दाहने बैठाना चाहिए।

यदि इतना ध्यान रखने पर भी कभी कोई भूल हो जाय तो महाराज को तुरंत उसके लिए खेद प्रगट करना चाहिए।

रेज़िडेंट को भी महाराज को राज्य का शासक समझ उनके उचित सम्मान का बराबर ध्यान रखना होगा। सारांश यह कि दोनों को एक दूसरे के साथ उचित व्यवहार रखना पड़ेगा। इस विषय में उनके बीच किसी प्रकार की ईर्ष्या वा आशंका न होनी चाहिए।

डाली इत्यादि भेजने का जो दस्तूर है उसके सिवा रेज़ि-डेंट को और किसी तरह की भारी नज़र देने की कोशिश न करनी चाहिए। अँगरेज़ी अफ़सरों को बहुमूल्य भेंट स्वीकार करने का निषेध है, और प्राय: उनमें इतना विवेक होता है कि वे छिपाकर भी इस निषेध का उल्लंघन नहीं करना चाहते। सारांश यह कि किसी अँगरेज़ी अफ़सर पर गुप्त वा अनुचित रीति से निहोरा डालने का यत्न न करना चाहिए।

रेज़िडेंट को जो बातें बतलाई या लिखी जायँ वे बिलकुल जँची हुई और सच्ची हों। इसमें कसर होने से विश्वास की हानि होती है।

रेज़िडेंट को जो बात बतलाई या लिखी जाय वह पूर्ण शिष्टता और शांति के साथ। जहाँ मतभेद प्रकट करना हो वहाँ इसका और भी अधिक ध्यान रक्खा जाय।

कभी कभी कुछ बातों में मतभेद भी होगा। बहुत सी बातें तो जाँच, पूछपाछ और सोच विचार करने से तै हो जायँगी। कुछ बातों में मिलकर निपटेरे की राह निकालनी होगी। बाक़ी और छोटे छोटे मामलों में एक को दूसरे की बात मानने ही से बनेगा।

पर कुछ मामले ऐसे भी आन पड़ेंगे जिनमें भारी भारी बातों का वारा न्यारा होगा और जिनमें मतभेद भी अधिक होगा। ऐसे मामलों में गहरी लिखापढ़ी की ज़रूरत होगी। ऐसे मामलों में महाराज की ओर उनका मत प्रकट करने के लिए जो पत्र भेजे जायँ वे बड़ी सावधानी से लिखे जायँ जिसमें जब वे अँगरेज़ सरकार के ऊँचे अधिकारियों के हाथ में जायँ तब उनका अभिलषित प्रभाव पड़े। ऐसे पत्र पूर्ण और अभिप्रायगर्भित हों, उनकी भाषा और ध्वनि शिष्ट और नम्र हो, उनमें लिखी बातें और दलीलें ठीक और स्पष्ट हों, और उनमें जिन सिद्धांतों की आड़ ली गई हो वे ऐसे हों जिन्हें अँगरेज़ी सरकार स्वीकार करती हो।

यहाँ पर यह भी बतला देना आवश्यक है कि ऐसी लिखा पढ़ी के लिए वकील बैरिस्टर उपयुक्त नहीं होते जब तक उन्हें राजनैतिक पत्र व्यवहार का भी अभ्यास न हो। जिस ढंग से एक वकील जज को संबोधन करता है वह उससे कहीं भिन्न है जिस ढंग से राजा महाराजा अँगरेज़ सरकार को संबोधन करते हैं। क़ानूनी दलीलें काम में लाई जायँ पर ऐसी लिखा पढ़ी शासन विभाग के अनुभवी अधिकारियों ही के द्वारा होनी चाहिए।

जिन मामलों में मतभेद होगा उन्हें सेक्रेटरी आफ स्टेट आदि अँगरेज़ी राज्य के प्रधान अधिकारियों के पास भेजने से कभी कभी मनमोटाव हो जाना भी संभव है, पर इस इतने के लिए राजा महाराजों को अपना पक्ष न छोड़ना चाहिए। अपने अधिकार और मान मर्य्यादा तथा प्रजा के हित की रक्षा के लिए उन्हें ऐसे मामलों को प्रधान अधिकारियों तक ले जाना चाहिए। इसके लिए अँगरेज़ी सरकार उन्हें किसी प्रकार का दोष न देगी क्योंकि वह भी उनके मान और अधिकार को उसी तरह रक्षित रखना चाहती है जिस तरह अपने मान और अधिकार को।

यदि रेज़िडेंट की न्याय-बुद्धि में आवेगा तो जिन बातों के लिए महाराज प्रधान अधिकारियों के पास लिखेंगे उनका वह भी अपने पत्र में अनुमोदन कर देगा। क्योंकि सच पूछिए तो रेज़िडेंट दोनों ओर का प्रतिनिधि है। अँगरेज़ी सरकार

का नफ़ा नुक़सान देखनेवाला भी वही है और देशी रियासत का भी। यदि देशी रियासत की ओर से कोई और प्रतिनिधि अँगरेज़ी सरकार के यहाँ होता तो बात दूसरी थी। पर रेज़िडेंट ही सरकार का नफ़ा नुक़सान महाराज को बतलाता है और महाराज का नफ़ा नुक़सान सरकार को। इस कारण उसे दोनों पल्ले बराबर रखने चाहिएँ और निष्पक्ष रहना चाहिए। काम पड़ने पर उसे देशी रियासत के हित की भर सक रक्षा करनी चाहिए। हर्ष की बात है कि बहुत से रेज़िडेंट ऐसे उच्चाशय देखे गए हैं कि उन्होंने अधिकारियों का थोड़ा बहुत कोप सहकर भी देशी रियासतों के हित की पूरी पूरी रक्षा की है।

बात यह है कि देशी रियासत को रेज़िडेंट ही से काम पड़ता है। जैसा रेज़िडेंट होगा अँगरेज़ी सरकार भी उन्हें वैसी ही समझ पड़ेगी। बादशाह की सारी घोषणाएँ और बड़े लाट के सारे उदार संकल्प उन्हें वहीं तक ठीक जान पड़ेंगे जहाँ तक रेज़िडेंट उन्हें अमल में लावेगा। अतः रेज़िडेंट को वह निःस्वार्थता, वह उदारता और वह न्यायप्रियता पूरी पूरी दिखानी चाहिए जिसके लिए अँगरेज़ी सरकार प्रसिद्ध है। जैसा स्वामी हो वैसा उसका प्रतिनिधि होना चाहिए।

सब भारी मामलों में महाराज के सामने उनकी कौंसिल वा सभा की पक्की सम्मति उपस्थित की जाय। यदि इस पर भी कोई भारी संदेह की बात बनी रहे तो रेज़िडेंट से

सलाह लेनी चाहिए। वह निःस्वार्थ सम्मति देगा। यदि कोई भारी मामला हो तो उसके विषय में कोई संदेह न रहने पर भी रेज़िडेंट से राय ले लेना अच्छा ही होगा। पर ज़रा ज़रा सी बातों के लिए रेज़िडेंट को तंग करना भी विचार और शासन शक्ति की न्यूनता प्रकट करेगा।

रेज़िडेंट और महाराज के बीच कोई भारी बात झटपट ज़बानी न तै हो जानी चाहिए। दीवान को इतना समय मिलना चाहिए कि वह आगा पीछा विचारे, कुछ बातें बतलावे तथा कुछ अपनी सम्मति प्रकाशित करे।

यदि कोई बात ज़बानी तै भी हुई हो तो वह झटपट लिख ली जाय नहीं तो पीछे से बड़ी गड़बड़ी, भ्रांति और विरक्ति होगी। नियम तो यह होना चाहिए कि जब तक कोई बात कागज़ पर लिख न ली जाय तब तक वह तै न समझी जाय।

जब राजा महाराजा अपनी रियासत के कर्म्मचारी विवेक और सावधानी के साथ चुनेंगे तब रेज़िडेंट को उनकी मुक़र्ररी तरक्क़ी आदि के बारे में किसी तरह दख़ल देने की ज़रूरत न होगी।

रेज़िडेंट के पत्रों के जवाब जल्दी भेजे जायँ। पर जो पत्र भारी मामलों के संबंध में हों उनका उत्तर सोच विचार कर दिया जाय।

इस नियम का ध्यान रखना चाहिए कि महाराज की ओर से अँगरेज़ सरकार के प्रधान अधिकारियों के पास जो पत्र भेजे जायँ वे रेज़िडेंट की मारफ़त, बाला बाला नहीं।

राजा महाराजों को गुप्त कार्रवाइयों पर कभी विश्वास न करना चाहिए। कोई आकर महाराज से धीरे से कहेगा "मेरा बड़े लाट साहब पर बहुत कुछ ज़ोर है, मैं महाराज का काम करा सकता हूँ"। कोई कोई तो यहाँ तक आकर कहेंगे कि उनका ज़ोर विलायत के अधिकारियों तक पर है। ऐसे लोग प्रायः ओछे होते हैं और झूठी बातें बनाकर रुपया फँसना चाहते हैं। ऐसे लोगों को पास न फटकने देना चाहिए क्योंकि वे केवल रुपया ही नहीं लेंगे बल्कि महाराज की बदनामी करेंगे।

रियासतों में सरकारी रेज़िडेंट और उनके सहकारियों को कुछ अधिकार प्राप्त रहते हैं। राज्य तथा उसके कर्म्मचारियों को उनके इन अधिकारों में हस्तक्षेप न करना चाहिए।

सारांश यह कि राजा महाराजों को चाहिए कि सरकारी रेज़िडेंट का उचित सम्मान करें, उससे मित्रता का व्यवहार रक्खें, और अपनी खरी और स्थिर नीति के द्वारा उसे अपना विश्वासी और सहायक बनावें।

अंतिम वक्तव्य—अब यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया होगा कि भारी शक्ति वा अधिकार के साथ भारी जवाबदेही भी है। आजकल महाराजा का पद न अखंड सुख और भोग विलास के लिए है, न इसलिए है कि जनसमूह का जितना रुपया जिस तरह चाहे उस तरह उड़ाया जाय, न इसलिए है कि राज-शक्ति का प्रयोग बिना किसी प्रकार के अवरोध के

किया जाय, और न इसलिए है कि जो महाराज के मन में आवे वही क़ानून हो जाय। आजकल राजसिंहासन पर एक प्रचंड ज्योति जग रही है। यह ऐसी ज्योति है जो प्रत्येक दोष को जनसमूह के सामने झलकाती है। यह ऐसी ज्योति है जिसने राजाओं के ऊपर कर्तव्य का भार बढ़ा दिया है।

आजकल राजा महाराजा अपने कामों के लिए कई ओर जवाबदेह हैं, वे परमात्मा और अपनी आत्मा के निकट जवाबदेह हैं। वे निर्धारित सिद्धांतों के निकट जवाबदेह हैं, वे अपनी प्रजा के निकट जवाबदेह हैं। वे अँगरेज़ी सरकार के निकट जवाबदेह हैं। वे शिक्षित समाज के निकट जवाबदेह हैं।

राजा महाराजों को सदैव अपने कर्तव्य का उच्च आदर्श रखना होगा। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि उनके चारों ओर ऐसे सलाहकार हों जिनके कर्तव्य के आदर्श उच्च हों।

तअल्लुक़ेदारों के लिए कुछ अलग बातें

हिसाब किताब—रसीद और चुकता हिसाब सब एक बही पर दर्ज होना चाहिए। पर ख़र्चों का सब ब्योरा अलग अलग बहियों पर रहना चाहिए। जैसे इमारत का सब ख़र्च एक बही में रहे, अदालत का दूसरी बही में, भंडारख़ाने का तीसरी में, निज का ख़र्च चौथी में, इसी प्रकार और भी। हर एक विभाग के लिए जितना रुपया दरकार हो वह छपे हुए चेक द्वारा, जिस पर मालिक का दस्तख़त हो, राज्य के ख़ज़ाने से

मँगा लिया जाय और जितना रुपया ख़ज़ाने से लिया जाय उस विभाग की बही पर चढ़ा लिया जाय। एक एक विभाग का हिसाब किताब एक एक मुहर्रिर के ज़िम्मे कर दिया जाय और वही उसका जवाबदेह रहे। अदालत के ख़र्च बर्च का हिसाब रखने के लिए अलग मुहर्रिर रखने की ज़रूरत नहीं है। जो रियासत का मुख़्तार-आम हो वही अदालत के ख़र्च का सारा हिसाब किताब अपने ज़िम्मे रक्खे और महीने महीने उसे जाँच के लिए सदा कचहरी में भेजा करे। मुख़्तार आम हर महीने उन मुक़द्दमों के ख़र्च की सूची भेजे जिनकी डिगरी हो गई हो, जो ख़ारिज हो गए हों, और जो दायर हों।.

इस ढंग पर चलने से सब हिसाबों का एक में गड्डबड्ड न रहेगा और मालिक एक एक मद के हिसाब की जाँच के लिए एक एक दिन मुक़र्रर कर सकेगा।

फ़सल के समय अनाज भंडारख़ाने में बराबर जमा हुआ करे। जो जिस भंडारख़ाने में न हो वह बनियों से मोल ली जाय। जितनी चीज़ें बनियों से ली जायँ सबके लिए उन्हें छपे चेक दिए जायँ जिसमें हिसाब के समय यह झगड़ा न रह जाय कि किसके यहाँ से कितनी चीज़ आई है। बनिए बहुत समझ बूझकर लगाए जायँ। उन्हें लगाने का काम मुंशी मुहर्रिरों पर न छोड़ दिया जाय क्योंकि वे अपने ही मेल जोल के आदमियों को लगावेंगे। रियासतों में एक बात बड़ी विलक्षण देखने में आती है। हिसाब किताब रखने के लिए मुह-

रिर तो बहुत से रक्खे जाते हैं पर उनकी जाँच करनेवाला ख़ुद मालिक ही रहता है। विचारने की बात है कि उसके लिए इतने हिसाबों को ठीक ठीक जाँचना कितना कठिन है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिसाब किताब जाँचने के लिए कई विश्वासपात्र आडिटर रक्खे जायँ।

भारी भारी चीज़ों की ख़रीदारी के लिए बड़ी बड़ी दूकानों ही से व्यवहार रखना ठीक है। जो चीज़ें मँगानी हों उनके लिए मालिक खुद अपने हाथ का पुरज़ा भेज दे जिसमें बीच के लोगों को खाने की जगह न रहे। भारी भारी दूकानें दाम तो ज़रूर थोड़ा अधिक लेती हैं पर चीज़ें बढ़ियाँ देती हैं जिससे ख़रीदार घाटे में नहीं रहता। चीज़ें मँगाने के लिए जो चिट वा आर्डर भेजे जायँ उनकी नक़ल एक बही पर रहे।

प्रबंध-समिति—बड़े बड़े योग्य और विश्वासपात्र कर्म्मचारियों का भी बिना डर दाब के रहना ठीक नहीं और मालिक हर एक काम के ब्योरों की जाँच आप नहीं कर सकता इसलिए यदि रियासत के कर्मचारियों और प्रतिष्ठित रईसों में से कुछ लोगों को चुनकर एक प्रबंधसमिति वा कमेटी बना दी जाय तो मालिक सब हिसाब किताब और काग़ज़ पत्रों को देखने के झंझट से बच जायगा। रियासत के निवासी यदि अच्छी तरह शिक्षित न होंगे तो भी उस जगह की सब बातें उनकी जानी बूझी रहेंगी इससे वे बड़े काम के होंगे। मालिक को कमेटी के मेंबरों की राय जानने से बहुत लाभ होगा

और वे निश्चय भी कर सकेंगे कि कौन राय ठीक है। ऐसी कमेटी बनाने में कुछ ख़र्च भी नहीं है क्योंकि रियासत के जो प्रतिष्ठित रईस हैं उन्हें कुछ न कुछ लाभ रियासत से पहुँचता ही है अतः उन्हें वेतन देने की आवश्यकता नहीं है।

गाँवों का ठीका—काश्तकारों से सीधे लगान वसूल करने की अपेक्षा गाँवों को ठीके पर देना अच्छा है। इससे जमा भी सहज में वसूल हो जाती है, हिसाब किताब जाँचने का उतना बखेड़ा नहीं रहता और रियासत के नौकरों को रुपया कमाने का भी अवसर नहीं मिलता। कुछ लोग ठेकेदारों के जुल्म के कारण इस रीति को अच्छा नहीं समझते पर मेरी समझ में ज़मीदारों के सिपाही जितनी आफ़त मचाते हैं उतनी ठेकेदार नहीं, यदि वे समझ बूझकर चुने जायँ। यदि किसी गाँव का ठेका देना है तो उस गाँव में जो सबसे संपन्न और भलामानुस काश्तकार हो उसी को ठेका दे दिया जाय, यदि आवश्यकता हो तो उससे कुछ ज़मानत भी ले ली जाय। जहाँ तक हो सके छोटी छोटी मियाद के ठेके न दिए जायँ। ठेकेदार रियासत के बाहर के आदमी न हों। अपने नौकरों और संबंधियों को ठेका न देना चाहिए। जहाँ तक हो सके ठेके छोटी जाति के लोगों को जैसे, कुरमी, काछी, कोयरी आदि को दिए जायँ, ब्राह्मण. क्षत्रिय आदि ऊँची जाति के लोगों को नहीं। ठेकेदार से गाँव के मुनाफ़े की पाई पाई न वसूल कर ली जाय कुछ गुंजाइश उसके लिए भी

रक्खी जाय। यदि ठेके में कुछ लाभ रहेगा तो एक के छोड़ने पर उसके लिए कई आदमी दौड़ेंगे। इस प्रकार लगान वसूल करने के ख़र्च की बचत होगी, उपजाऊ ज़मीन भी अधिक निकलेगी हर तरह रियासत को लाभ ही होगा। किसी ठेके की मियाद जब पूरी हो जाय तब यदि कोई हर्ज न हो तो पहले ही ठेकेदार को फिर ठेका दिया जाय। थोड़े से और मुनाफ़े के लिए किसी नए आदमी को देना ठीक नहीं।

ठेका देते समय गाँव का मुनाफ़ा देख लिया जाय फिर उसमें से ठेकेदार के लिए कुछ परता निकालकर ठेका दे दिया जाय। जितने पट्टे और क़बूलियत हों सब स्टैंप पर हों, और फाइल की किताब में अक्षर क्रम से लगे रहें।

नौकरों को लगाना—आदमी कैसा ही योग्य हो वह सब काम आप नहीं कर सकता। अच्छा काम कराने के लिए अच्छे नौकर चाहिएँ और अच्छे और विश्वासपात्र नौकर मिलना सहज बात नहीं है। अच्छे नौकर भी विना डर दाब के अच्छा काम नहीं करेंगे। स्वामी की बुद्धिमानी इसी में है कि वह एक एक जगह के लिए उपयुक्त नौकर चुने क्योंकि यह सम्भव नहीं कि एक ही आदमी में सब आवश्यक गुण हों। कोई आदमी एक काम के लिए उपयुक्त है और दूसरे काम के लिए नहीं। समझदार मालिक अपने नौकर की क़दर एक गुण के लिए भी करेगा और उसके उसी गुण से लाभ उठावेगा। जिस तरह चतुर बढ़ई यह जानता है कि

अपने किस किस औज़ार से कौन कौन काम लेना चाहिए उसी तरह चतुर स्वामी इस बात को जानता है कि अपने किस किस नौकर से कौन कौन काम लेना चाहिए। पर वह एकबारगी उन्हीं के विश्वास पर सब काम नहीं छोड़ देता। वह उनका नित्य का काम देखकर उन पर धीरे धीरे विश्वास करता है। जहाँ तक हो पुश्तैनी नौकर रखना अच्छा है चाहे वे योग्यता में औरों से कुछ घटकर भी हों, क्योंकि नये आदमियों की अपेक्षा पुश्तैनी नौकर मालिक से अधिक प्रेम रखते हैं। जब कि कोई नौकर अपना काम अच्छी तरह कर रहा है तब उसके विरुद्ध छोटी छोटी शिका-यतों को न सुनना चाहिए। छोटे बड़े हर एक राज्य में कुछ कुचक्री धूर्त रहते हैं जो सदा अपने लाभ के लिए इंतज़ाम में अदल बदल चाहते रहते हैं। ये कुटिल नीतिवाले लोग इसी यत्न में रहते हैं कि मालिक सब काम अपने हाथ में ले ले क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा होने से ख़ूब अंधाधुंध रहेगी और अपना अर्थ साधने का अच्छा मौक़ा मिलेगा।

कुचक्री नौकर को निकाल देना चाहिए। क्योंकि यदि एक आदमी ऐसा रहेगा तो वह सब आदमियों को बिगाड़ देगा। यहाँ तक कि वह धीरे धीरे सब नौकरों का अगुवा और सलाहकार हो जायगा और सब नौकर उसके पास यह सीखने आया करेंगे कि मालिक को कब और किस ढंग से धोखा देना चाहिए। वह अपने नये चेलों को सिखा देगा

यहाँ यह बड़ी बुरी चाल है कि वे अपने लड़कों को नौकर चाकरों के लड़कों का साथ करने देते हैं। धीरे धीरे नौकर चाकरों के ये ही लड़के मालिक के लड़कों के गहरे दोस्त हो जाते हैं और उन पर बहुत कुछ ज़ोर रखने लगते हैं। इनके माँ बाप इसके लिए उन पर बहुत प्रसन्न होते हैं और उनके द्वारा अपना काम निकालना चाहते हैं। ख़िदमतगारों के ये लड़के आगे चलकर इतने इतरा जाते हैं कि अपने को मालिकों के बराबर समझने लगते हैं और राजकाज के मामलों में दख़ल देने लगते हैं। फिर तो बिना इनके माने जाने योग्य से योग्य मैनेजर वा सेक्रेटरी की ख़ैरियत नहीं।

मालिक की लड़कियों का जब ब्याह होता है तब उनके साथ उनसे हिली मिली कुछ लौंड़ियाँ वा नौकरों की लड़कियाँ की जाती हैं। ये वहाँ भी अपना ज़ोर रखना चाहती हैं और कभी कभी घर के प्राणियों में झगड़ा लगा देती हैं।

अस्तु, उत्तम उपाय तो यह है कि अपने संबंधियों वा प्रतिष्ठित पड़ोसियों के लड़कों में से कुछ अच्छे लड़कों को चुनकर उन्हें अपने लड़कों के साथ शिक्षा पाने के लिए कर दे। यदि यह न हो सके तो अपने कर्म्मचारियों के लड़कों में से चुने। सारांश यह कि छोटे छोटे नौकर चाकरों को अपने लड़कों के साथ बहुत हेल मेल न बढ़ाने देना चाहिए।

मनबहलाव—केवल समय काटने के लिए ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी थोड़ी बहुत कसरत खेल कूद, वा

मनबहलाव ज़रूरी है। पर ध्यान इस बात का रहे कि कहीं इन बातों की धुन न हो जाय। कसरत और खेलकूद का मतलब इतना ही है कि स्वास्थ्य की रक्षा रहे जिससे काम अच्छी तरह हो सके और मनबहलाव इसलिए है कि लगातार एक ही काम को करते करते जी भी न ऊबे और समय भी बिलकुल खाली न जाय। जहाँ मनबहलाव का कोई उचित प्रबंध नहीं रहता वहाँ लोग, विशेषकर रईसों के लड़के, बुरी संगत में पड़ जाते हैं और धीरे धीरे उन्हें कुछ ऐसे व्यसन लग जाते हैं जिनके कारण वे अपना और अपने घर का सत्यानाश करके रख देते हैं। इसी से कसरत और खेल कूद के सिवा लिखना, पढ़ना, चित्रकारी और संगीत आदि भी मनबहलाव के लिए चाहिए। राजाओं और रियासतदारों के लड़कों को प्रायः दिहात में रहना पड़ता है इससे इसका ध्यान रखना चाहिए कि उनके मनबहलाव के लिए अच्छी अच्छी बातें हों और वे नौकर चाकरों के लड़कों के साथ बहुत हेल मेल न बढ़ाने पावें।